योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

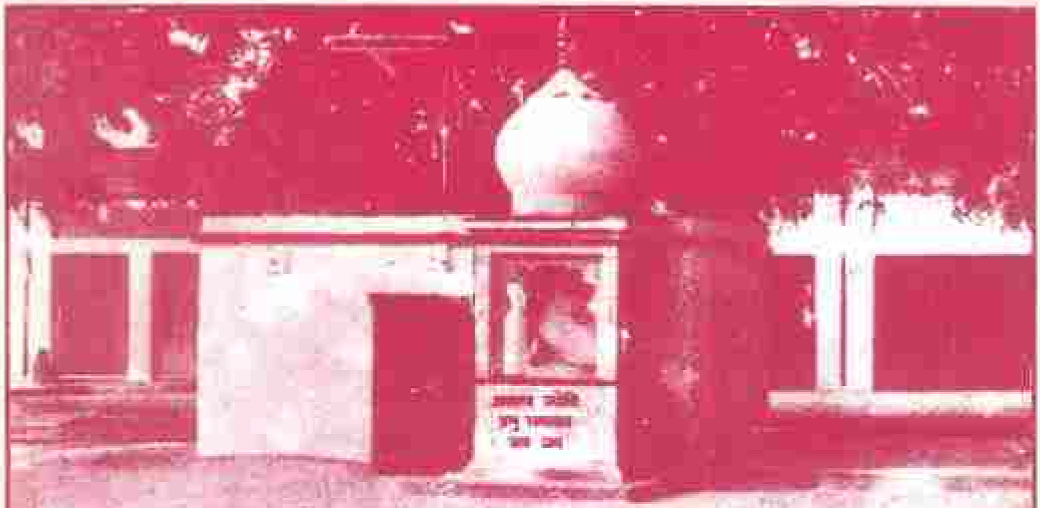

वर्ष 33 दिसम्बर 2000 अंक 9

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
—आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव
विनोद कुमार शर्मा

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	75-00
द्विवार्षिक	रु०	140-00
आजीवन	रु०	750-00

इस अंक में

- नः अभियाकरीहि !.................... 1
- अमृत कण.................................. 2
- विशेष लेख
  अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज... 3
- सम्पादकीय................................. 8
- औपनिषद योग और गोरखनाथ की योग-साधना
  डा० राधेश्याम दुबे..................... 11
- रचना
  श्री भुवनेन्द्र झा........................ 15
- परमार्थ के लिए योग
  ले. उमेश्वर त्रिपाठी.................. 16
- हे गुरुदेव ! तुम्हें कोटिशः नमन
  राजेश कुमार श्रीवास्तव.............. 18
- 'योग भोग में राखिय गोई'
  प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा.......... 25
- योग प्रचार कार्यक्रम कानपुर : एक रिपोर्ट
  केशवदेव उपाध्याय..................... 31
- स्वस्थ और स्वास्थ्य-एक विश्लेषण
  विजय प्रकाश पालीवाल.............. 35
- आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ
  विजय प्रकाश पालीवाले.............. 36
- जीवन तत्व साधन..................... 37
- आवश्यक सूचना........................ 40

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33
अंक 9

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

दिसम्बर
2000

नः अभिचाकशीहि !

या ते रुद्र शिवा
तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया
गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् ३/५

भावार्थ

हे रुद्रदेव ! आपकी जो भयानकता से शून्य तथा पुण्यकर्मों से प्रकाशित होने वाली कल्याणमयी सौम्यमूर्ति है–जिसका दर्शन करके मनुष्य परम आनन्दमग्न हो जाता है–हे गिरिशान्त ! अर्थात् पर्वत पर निवास करते हुए समस्त लोकों को सुख पहुँचाने वाले परमेश्वर ! उस परम शान्त मूर्ति से ही कृपा करके आप हम लोगों की ओर देखिये। आपकी कृपादृष्टि पड़ते ही हम सर्वथा पवित्र होकर आपकी प्राप्ति के योग्य बन जायेंगे।

अमृत कण

यथा पद्मं जले जातं, नोपलिप्यते वारिणा।
एवमलिप्तं कामैः, तं वयं ब्रूमो ब्राह्मणम्।।

जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार काम-भोग के वातावरण में उत्पन्न हुआ जो मनुष्य उससे लिप्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

※ ※ ※

दुःखं हतं यस्य न भवति मोहः, मोहो हतो यस्य न भवति तृष्णा।
तृष्णा हता यस्य न भवति लोभः, लोभो हतो यस्य न किञ्चन।।

जिसको मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया। जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह का नाश कर दिया। जिसके लोभ नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया (और) जिसके पास कुछ नहीं है, उसने लोभ का (ही) नाश कर दिया।

※ ※ ※

आत्मा कर्ता विकर्ता च, दुःखानां च सुखानां च।
आत्मा मित्रममित्रम् च, दुष्प्रस्थितः सुप्रस्थितः।।

आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता है और विकर्ता (भोक्ता) है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

※ ※ ※

आत्मा चैव दमितव्यः, आत्मा एव खलु दुर्दमः।
आत्मा दान्तः सुखी भवति, अस्मिंल्लोके परत्र च।।

स्वयं पर ही विजय प्राप्त करना चाहिए। अपने पर विजय प्राप्त करना कठिन है। आत्म-विजेता ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है।

※ ※ ※

शरीरमाहुर्नौरिति, जीव उच्यते नाविकः।
संसारोऽर्णव उक्तः, यं तरन्ति महर्षयः।।

शरीर को नाव कहा गया है और जीव को नाविक। यह संसार समुद्र है, जिसे महर्षिजन तैर जाते हैं।

※ ※ ※

विशेष लेख

योग साधना में श्रद्धा का महत्व

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने अपने पिछले व्याख्यानों में भी श्रद्धा का साधक के जीवन में कितना महत्व है इसे बार-बार बताया है। श्रद्धा योग की वर्णाक्षरी है। श्रद्धा से ही योग शुरू होता है। चित्त की पाँच प्रकार की जो भूमियाँ हैं उनमें विक्षिप्तावस्था वाले प्राणियों में श्रद्धा का उदय होने लगता है। श्रद्धा क्या है ? योगदर्शन में व्यासदेव ने भाष्य में इसका उत्तर दिया है। **'श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः' सा हि जननीव कल्याणी योगिनम् पाति'** चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है वह श्रद्धा माँ की तरह योगी की रक्षा किया करती है। श्रद्धा के उदय होने पर सतोगुण का विकास होता है। साधक में दैवी सम्पति का उदय होने लगता है। मैंने तुम्हें बतलाया था कि योगी दो प्रकार के होते हैं। एक **भव प्रत्यय** वाले तथा दूसरे **उपाय प्रत्यय** वाले। भव प्रत्यय वाले वे कहलाते हैं जो जन्म से ही योग की प्रवृति वाले होते हैं। तथा दूसरे योगी उपाय प्रत्यय वाले होते हैं। ऐसे योगियों को प्रयत्न करने पर ही स्थितियाँ प्राप्त हुआ करती हैं। उनके लिये पाँच सीढ़ियाँ हैं जिससे वह अपने लक्ष्य-समाधि तक पहुँचा करते हैं। वे हैं-**श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि** एवं **प्रज्ञा**। उपाय प्रत्यय वालों के लिये पहली बात है कि उनमें श्रद्धा हो। श्रद्धा से साधना में दृढ़ता आती है। दृढ़ श्रद्धा होने पर उत्साह होने के कारण स्मृति होती है-स्मृति उपस्थान होता है। अनुभूत विषय का चित्त में ज्यों का त्यों कायम रहना स्मृति कहलाती है। स्मृति उपस्थान होने पर योगी अपने पिछले लाखों जन्मों के बारे में जान लेता है। योगदर्शन में बताया है संस्कार साक्षात्कार करने से योगी को पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। इसी सूत्र की व्याख्या करते हुये व्यास जी ने एक उपाख्यान दिया है। योगी आवटय ने दूसरे योगी जैगीषव्य से कहा-आप ने अपने संस्कारों के साक्षात्कार से दश महासर्गों में मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी आदि शरीरों में होने वाले दुःख सुख को जाना है। आप ने सबका निचोड़ क्या निकाला है ? इस पर जैगीषव्य ने कहा- मुझे तो सर्वत्र दुःख नजर आया है। इस प्रकार से स्मृति के उपस्थित हो जाने पर योगी को पिछले जन्मों का ज्ञान हो जाता है। इससे संसार को दुःख रूप समझकर योगी तत्वज्ञान की ओर बढ़ता है। चित्त स्वतः एकाग्र होने लगता है। फिर **'समाहित-चित्तस्य प्रज्ञाविवेक उपावर्तते**, चित्त के समाहित हो जाने पर स्फुट प्रज्ञा- बुद्धि का भंडार खुल जाता है। जिससे सत्य को धारण करने वाली बुद्धि मिल जाती है। श्रद्धा से योगी अपने इष्ट को अपने पास बुला लेता है। योगी अपनी शक्ति से चित्त का निर्माण करता है। किन्तु ब्रह्मा, विष्णु आदि के चित्त को खींच नहीं सकते क्यों कि वे महायोगी हैं। योगी अपना ही चित्त बना सकता है। यदि योगी के अन्दर श्रद्धा पूरी पैदा हो

जाती है, इष्ट में अनन्य प्रेम है, निष्ठा है, तो इसका फल यह निकलेगा कि इष्ट का निर्मापित चित्त जबरदस्ती आ जायेगा। एकलव्य को द्रोणाचार्य ने शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया; किन्तु एकलव्य ने श्रद्धा से द्रोणाचार्य के चित्त को खींच लिया। श्रद्धा के कारण उसको निर्मापित चित्त ने एकलव्य को सारा ज्ञान दिया। इसी प्रकार से हम सिद्धों के चित्त को भी श्रद्धा से ही खींच सकते हैं। बनाये हुये चित्त से वे उपदेश करते हैं कष्टों से बचाते हैं तथा कृपायें किया करते हैं।

जब हम किसी सिद्ध योगी की आकृति का ध्यान करते हैं तो उस श्रद्धा के कारण योगी अपना निर्मापित चित्त भेज देते हैं। मीराबाई के जीवन में बहुत बड़े-बड़े कष्ट आये वे साँप से डसी गई, उसे विष पान कराया गया, अन्यान्य घोर कष्ट उसे दिये गये; किन्तु उनकी श्रद्धा के कारण उनका बाल बाँका नहीं हुआ। इन सब के पीछे श्रद्धा व उसकी अतुलित शक्ति ही कारण है। संकीर्तन लोग आज भी करते हैं। भक्ति का भी अभिनय होता है, किन्तु संकीर्तन करने वालों के जीवन में ऐसी घटनायें घटित नहीं होती। कुछ इने गिने ही भक्त हुये हैं जिनके साथ ऐसी घटनायें घटित हुई हैं। **नरसी मेहता** के जीवन में भी ऐसी घटनायें घटी थी। **गोस्वामी तुलसीदास** जी के जीवन में भी कई अलौकिक घटनायें घटी। बनारस में एक स्त्री अपने मृत पति के साथ सती होने जा रही थी। मैं सतियों की निन्दा नहीं करता हूँ सतियाँ वन्दनीया है शक्ति स्वरूपा हैं। किन्तु पति के प्राणों के साथ यदि सती के भी प्राण निकलते तो यह सतीत्व है। किन्तु पति के मर जाने पर बाद में जबरदस्ती उसे चिता में तारों से बाँधकर बैठा दिया जाता है, यह ठीक नहीं है। यह तो एक प्रकार से हत्या है। तड़फते हुये शरीर छोड़ने से मनुष्य अपगत हो जाता है और सर्प-बिच्छू आदि योनियों में चला जाता है। क्योंकि भगवान कहते हैं- अन्त समय में शरीर छोड़ते समय जैसी भावना होती है वैसी गति उसकी होती है। आम मृत्यु तड़फ-तड़फ कर होती है। मैं तुम्हें तुलसीदास की घटना बता रहा था। उस स्त्री ने सोचा-तुलसीदास सन्त हैं इन्हें प्रणाम करती हुई जाऊँ। वह श्रृंगार करके पति के साथ सती होने जा रही थी उसके श्रृंगार पूर्ण रंगीन वस्त्रों को देखकर तुलसीदास जी ने कह दिया-सौभाग्यवती भव। ऐसा कहने पर वह स्त्री कहने लगी महाराज। मेरा सौभाग्य तो पोटली में बँधा हुआ आ रहा है। तुलसीदास ने कहा-अच्छा ऐसी बात है ? तुलसीदास जी उस शव के पास गये और उसके मुख से कपड़ा हटाकर कहने लगे- राम के राम कहो रे। ऐसा कहते ही उसमें पुनः प्राण संचार होने लगा और वे जीवित हो गये। तो इस प्रकार की घटनायें तुलसीदास के जीवन में घटित हुई। तुम्हारे साथ भी ऐसी घटनायें घटित हो सकती हैं, यदि तुम ध्यान योगी बन जाओ। तुम अपनी साधना में लगे रहो। मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मुझे अपना हर बच्चा दीखता है। मैं उन सर्वशक्तिमान की ओर से ही कह रहा हूँ किन्तु जो लोग कुछ भी अभ्यास नहीं करते उन्हें मुझ से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

मैंने तुम्हें सम्प्रज्ञात योग के अन्तर्गत बताया था कि विचारानुगत समाधि में योगी के सामने

अन्तराय आया करते हैं। रमण गिरि का उदाहरण दिया था कि किस प्रकार से प्रलोभन में आकर वह योग निधि को खो बैठा। उन प्रलोभनों से अनन्य निष्ठ गुरूभक्त ही बच सकता है। वह लोक लोकान्तर को तुच्छ समझता है। सद्गुरू की आराधना करने वाला देवलोक के अन्तरायों से बच जाता है, उनके सामने उर्वशी, रम्भा आदि कोई अप्सरा नहीं आती। गुरू सत्ता देखने में मानव आकृति ही दिखाई देती है किन्तु वही अखण्ड मण्डलाकार सत्ता होती है। **'स पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात्'** वह ब्रह्मा, विष्णु का भी गुरू है तथा काल से परिछिन्न नहीं है। उसको ही **प्रणव** कहा जाता है। जिसके अन्दर वह नित्य तेज रहता है उन सद्गुरू की आकृति का ध्यान करने वाले को कोई अन्तराय नहीं आता।

सद्गुरू सत्ता में सभी देवी देवताओं का समावेश होता है। उस सत्ता को तुम कुछ भी नाम दे दो किन्तु **'नास्ति तत्वं गुरोः परम्'**। गुरू सत्ता से आगे कोई सत्ता नहीं है। और गुरू देव के चिन्तन करने वाले का अनिष्ट नहीं होता। तुम्हारे घरों में श्री प्रभु जी का स्वरूप विराजमान है। जहाँ स्वरूप की आरती पूजा एवं भोग प्रसाद आदि श्रद्धापूर्वक नियम से लगाये जाते हैं। उन घरों में श्री प्रभु जी का तेज रहा करता है। मैं एक घटना सुनाता हूँ। जिससे तुम्हें ज्ञात हो जायेगा कि प्रभु जी के स्वरूप में कितनी शक्ति है। करनाल जिला में कुराना एक गाँव है। वहाँ पर एक बच्चे ने मुझ से दीक्षा ली। ध्यानाभ्यास भी नियमित करता था। उसका एक बूढ़ा बाबा था। वह श्री प्रभु जी के चित्र से चिढ़ता था–'कहा करता था राम का चित्र नहीं, कृष्ण का चित्र नहीं और किसी देवी देवता का चित्र नहीं– किसी बाबा का चित्र रख रखा है घर में। अन्त में एक दिन वह बूढ़ा प्रभु जी के चित्रों को फैंक देने तक को उद्यत हो गया। वह लड़का उस चित्र को उठाकर कुराना आश्रम में ले आया। श्री प्रभु जी के चित्र के हट जाने के बाद ही उस घर में २–३ मौतें हो गईं। गर्भिणी स्त्री पर भी दुरात्मा का प्रभाव चल पड़ा अन्त में वे लोग मेंहदीपुर बाला जी गये। वहाँ पर हनुमान जी के दूतों ने प्रेतात्माओं को मार लगानी शुरू कर दी। प्रेतात्माओं ने कहा–हमने तो बहुत पहले ही सारे परिवार को खत्म कर देना था; किन्तु ये लोग अब तक बचे रह गये। उनके घर में एक बाबा जी चिमटा लिये हमेशा खड़े रहते थे उनके भय से हम घर में किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। अब बाबा जी का स्वरूप उस घर में नहीं है, अब हम भयमुक्त हो गये हैं। इस स्त्री के पेट में जो बालक है इसको भी हम समाप्त कर देंगे। इस पर बाबा जी के दूतों ने इन्हें कहा कि यदि इसकी पीड़ा से बचना चाहते हो तो गुरुदेव के वे चित्र अपने घर में पुनः स्थापित कर दो। वे ही तुम्हें बचा पायेंगे। हम भी उनके ही सेवक हैं। घर लौटने पर घर के सभी सदस्य बाबा सहित कुराना आश्रम में गये और अत्यन्त श्रद्धा के साथ श्री प्रभु के चित्र को लाकर पुनः अपने घर में स्थापित किया एवं नित्य सामूहिक आरती पूजन व कीर्तन करने लगे। इस प्रकार से प्रेतात्माओं से पीछा छूट गया। अस्तु।

योग की ताकतें श्रद्धा भक्ति वाले साधक को ही मिला करती हैं। भगवान ने योग शक्ति को

अपने अन्दर धारण करने के लिये तीन बातें बताई हैं। पहला है **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्** अर्थात श्रद्धावान ही ज्ञान का अधिकारी है। दूसरी बात है **तत्परः** जो अपनी साधना में लगन से लगा रहता है याद रखो **'मनुष्य मजूरी देत है क्यों राखे भगवान'**। यदि साधना में लगे हो सर्वशक्ति मान देख रहे हैं। और तीसरी बात है **संयतेन्द्रियः** की। जो **यतवाक्कायमानसः** है' अर्थात् जिनका वाणी पर, अपने शरीर व इन्द्रियों पर तथा अपने मन पर अधिकार हो वह योग का अधिकारी होता है। संयतेन्द्रिय का अर्थ है जितेन्द्रिय होना। ब्रह्मचर्य का पालन करना। आजकल के समय में ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव सा है, किन्तु सम्भव भी है उसका रास्ता है योग। मन को अन्तर्मुखता की ओर ले जाने पर धीरे-धीरे विषयों से मन उपराम होने लगता है। जिसका आहार विहार युक्त नहीं है जो अपनी साधना में **'तत्परः'** के सिद्धान्त को सामने नहीं रखता, गुरू आज्ञा में रहकर साधना में चलना नहीं सीखा, गुरूदेव के थपेड़े नहीं खाये तो गहरे से गहरा शक्तिपात हो जाने पर भी वह साधना से भटक जाता है। थोड़ी बहुत शक्ति पाकर दुनियाँ में थोड़ा बहुत मान सम्मान पा लेते हैं उससे आगे उनके सामने अन्तराय आ जाया करते हैं क्योंकि वे मन्मुख होकर चलने लगता है। साधना में जिसका भी पतन हुआ है उसका कारण उसकी मन्मुखता ही है। गीता में भगवान आदेश देते हैं **'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिम् निवेशय्'**। सभी जीव ईश्वर के सनातन अंश हैं, यदि अन्तर कुछ है तो मन और बुद्धि का। अखिलात्मा कृष्ण चन्द्र के भी मन और बुद्धि हैं वे पूर्ण उनके अपने अधीन होते हैं। हमारा मन उनके मन में मिल सकता है बुद्धि उनकी बुद्धि में मिल सकती है। साधर्म्य वाली एक जैसे धर्मवाली दो वस्तुयें मिल सकती हैं। वैधर्म्य वस्तुयें नहीं मिला करतीं। हम श्री कृष्ण के चित्त को खींच नहीं सकते वह परिपूर्ण ब्रह्म हैं। किन्तु हम श्रद्धा व ध्यान से अपने चित्त को उनमें लय कर सकते हैं। तब तुम्हारे पास श्री कृष्ण स्वयं अपने निमंत्रित चित्त को भेज देंगे। भेजने पर वे तुमसे बात करेंगे, तुम्हारे सामने आयेंगे, तुम पर कृपा होने लगेगी।

ध्यान की प्रक्रिया में हमारे तैजस परमाणु भगवान कृष्ण के महान तैजस परमाणु में मिल जायेंगे। फिर साधक अनुभव करेगा- **कृष्णोऽहम्** मैं ही कृष्ण हूँ। **'निवसिष्यसि मय्येव'** की स्थिति आ जायेगी। उसमें श्री कृष्ण की ताकतें तुम्हारे मन में आने लगेंगी। तुम्हारे मन में श्री कृष्ण का तेज परिपूरित होता चला जायेगा। **'मयि मन आधत्स्व'** का यही फल है। यह योग विज्ञान की बात है ध्यान योग के जो अभ्यासी है वे इस बात को समझ सकते हैं। इसको सबीज समाधि अथवा सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। गुरूदेव में जिनकी श्रद्धा है जो विनयशील हैं, वही कुछ पा सकता है। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी कहा करते थे कि यदि कोई गुरूदेव का अपमान करके महाप्रभु जी के चरणों में भी पहुँच जायेगा तो वह शाप लेकर ही आयेगा। इसलिये विनयी ही कुछ पा सकता है। अहंकारी कुछ नहीं पाता। लोग जीवन में छोटे-छोटे स्तर के अभिमान को ही नहीं छोड़ पाते। जो सब कुछ त्याग कर अभिमान का नाशकर सद्गुरू चरणों में पहुँचता है वह सब कुछ पा जाता है।

गोपीचन्द भर्तृहरि जैसे महान राजा थे। उन्होंने अपना सारा राजपाट, रानियाँ, महल-बंगले सभी कुछ छोड़ दिया और सद्गुरू के शरणागत हुये। आज वे लोग अजर-अमर हैं। सर्वत्र लोक लोकान्तर में स्वच्छन्द विचरण करते हैं। इसलिये तुम लोगों को भी बार-बार सचेत करता हूँ। ध्यान योग का अभ्यास करो। अपने आप को नियमानुवर्तिता के ढाँचे में ढालो। देखो भगवान ने भागवत में उद्धव को उपदेश देते हुये एकादश स्कन्ध में कहा है-

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभम् प्लवं सुकल्पं गुरू कर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

अर्थात् यह मानव शरीर अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी सुलभ हो गया है। संसार सागर से पार जाने के लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरणागति में आ जाने पर गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवार का संचालन करने लगते हैं और स्मरण मात्र से ही मैं अनुकूल हवा बनकर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा मिल जाने पर भी जो इस शरीर के द्वारा संसार सागर से पार नहीं हो जाता वह तो अपने ही हाथों अपनी आत्मा का हनन् करता है ! वह **आत्महा** अर्थात् आत्महत्यारा कहलाता है।

अब तुम लोग देख लो। तुम सब को ईश्वर की कृपा से सुन्दर स्वस्थ शरीर मिला हुआ है कोई रोग-शोक प्रभु कृपा से नहीं है बहुत पुण्य करने पर ही मनुष्य का शरीर मिलता है वह भी यदि स्वस्थ हो तो फिर कहना ही क्या। श्री प्रभु जी सर्वशक्तिमान तुम्हें गुरू के रूप में मिल गये हैं जो तुम्हारी जीवन नैय्या को चलाने वाले हैं। भगवान ने अपनी अनुकूल हवा चलाई हुई है। तुम सब अच्छे घरों के खाते-पीते बच्चे हो। सब सुख-सुविधा प्रभुजी की कृपा से तुम लोगों को प्राप्त है यह ईश्वर की कृपा ही-अनुकूल हवा है। इन तीन दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त करके भी यदि कोई अपने आत्मोद्धार का प्रयास नहीं करता है तो वह आत्म-हत्या करता है। इसलिये समय रहते अपने आप को संभाल लो। पवित्र योग मार्ग में लग जाओ। जो प्रभु जी के चरण कमलों का सहारा लेकर आगे बढ़ेंगे, वे सर्वशक्तिमान उनकी अवश्य सहायता करेंगे। सभी का कल्याण हो। ओम्। सभी को आशीर्वाद !

***

दर्शन का अल्प ज्ञान मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुका देता है, परन्तु दार्शनिकता की गहनता में प्रवेश करने पर, मनुष्य का मन धर्म की ओर उन्मुख हो जाता है।

स्वाध्याय में प्रमाद मत करो

प्राचीनकाल में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी गुरुकुलों में जाया करते थे। जब वे पढ़कर स्नातक हो जाते थे तो घरों को वापिस भेजते समय गुरुदेव उन्हें फिर उपदेश दिया करते थे। नैतिक शिक्षा के रूप में उन्हें कुछ व्रत व नियम समझाये जाते थे, जिन पर चलना उनका नैतिक धर्म बन जाता था। गुरुदेव उनसे कहा करते थे- ''आचार्यदेवो भव ! मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, अतिथिदेवो भव, स्वाध्यायात्मा प्रमदः' आदि-आदि। इसके साथ-साथ गृहस्थ जीवन में आने पर भी धर्मयुक्त तपोमय जीवन बिताते हुये सदाचार युक्त जीवन जीने की आज्ञा देते हुये गुरुदेव उन्हें 'सत्यं वद् ! धर्मं चर' ! आदि-आदि वाक्य कहा करते थे। इस प्रकार से बालक में बाल्यकाल से ही सदाचार एवं स्वाध्याय का पाठ दृढ़ता से पढ़ाया जाता था।

स्वाध्याय के कई अर्थशास्त्रों में परिभाषित है। योग दर्शन में स्वाध्याय के दो अर्थ बताये गये हैं। इनमें से एक अर्थ है ओम् आदि परमात्मा के विभिन्न नामों का जाप करना तथा दूसरा अर्थ है मुक्तिदाता शास्त्रों का अध्ययन एवं मनन चिन्तन करना।

स्वाध्याय का एक अर्थ यह भी निकलता है-स्व का अर्थ है आत्मा ! आत्मज्ञान विषयक तत्वों का अध्ययन व अनुसन्धान। इसे आत्म विश्लेषण भी कहा जा सकता है। इसी का नाम अध्यात्म भी है।

अज्ञानी जीव के अज्ञान को दूर करने के लिये-अन्तःकरण की शुद्धता के लिये स्वाध्याय की परम उपादेयता है। स्वाध्याय के जो दो रूप योगदर्शन में बताये हैं उनमें पहले में उपनिषदों का पाठ व मनन भगवान के महिम्न का पाठ, स्तोत्र पाठ आदि हैं। दूसरे प्रकार के स्वाध्याय में मन्त्रों का जाप आता है, जो पाठ से अधिक महत्वपूर्ण व प्रभावी होता है। मन्त्र जाप के भी वाचिक, उपांशु एवं मानसिक ये अवान्तर भेद हैं। स्तोत्र पाठ व आरती पूजन ये वाचिक जाप ही हैं। स्वाध्याय भी तप का ही प्रकार है। योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी ने ईश्वर दर्शन के लिये अथवा समाधि के लिये उपाय स्वरूप तीन स्तम्भों का वर्णन किया है। ये स्तम्भत्रय ही साधन योग या क्रियायोग के नाम से जाना जाता है। ये उपाय हैं- तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान। इन तीन साधनों को इस क्रम में रखने का भी विज्ञान है। हमारा स्वाध्याय निर्विघ्नपूर्वक लम्बे समय तक चले इसलिये यह आवश्यक है कि हमारा शरीर स्वस्थ हो। संयमित व तपोमय देह ही स्वस्थ रह सकता है। सर्दी-गर्मी,

भूखप्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करने की योग्यता ही तप है। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति में सम रहना मानसिक तप है। तपयुक्त स्वाध्याय ही अभीष्ठ फल को देने वाला होता है। स्वाध्याय से जहाँ मनुष्य इहलौकिक कामनाओं की पूर्ति कर लेता है वहीं पर स्वाध्याय इष्टदर्शन का एकमात्र उपाय है। योगदर्शन में **'स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग:'** कहकर यह बताया है कि स्वाध्याय से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। स्वाध्यायशील साधक को ऋषि-मुनि तथा सिद्ध लोग स्वयंमेव दर्शन दे जाया करते हैं। यदि कोई व्यक्ति सिद्ध दर्शन की अभिलाषा से हिमालय में भी पहुँच जाये तो भी स्वाध्याय के अभाव में उसे सिद्धों के दर्शन नहीं हो पाते हैं। सिद्धों के ब्रह्मचारी शिष्य उन्हें परख लिया करते हैं यदि व्यक्ति स्वाध्याय से शुद्धसत्व नहीं हुआ है तो उसे गुरुदेव के दर्शन कराये नहीं जाते। ऐसे प्रसंग व घटनायें पढ़ने, सुनने को मिलती है। 'स्वाध्याय ही एक ऐसा साबुन है जो मनुष्य के अन्त:मल को धो डालता है। स्वाध्यायशील मनुष्य ही 'मनुष्य की श्रेणी में आता है। स्वाध्याय भवरोग की अचूक दवा है। इसी से ही सत्-असत् का विवेक प्रस्फुटित होता है। योगदर्शन में परमात्मा प्राप्ति के दो साधन बताये हैं जिनमें प्रथम है स्वाध्याय तथा दूसरा ध्यान योग का अभ्यास।

स्वाध्यायाद् योगमासीत, योगात् स्वाध्यायमामनेत्

अर्थात् साधक पहले स्वाध्याय (मन्त्रजाप) करे। यह स्वाध्याय कम से कम दो घण्टे तक करना ही चाहिये। स्वाध्याय के पश्चात् साधक को ध्यानाभ्यास में बैठना चाहिये। प्रारम्भिक साधकों को कम से कम एक घण्टा ध्यानाभ्यास करना ही चाहिये। इस प्रकार मन्त्रजाप एवं योग से परमात्मा को प्राप्त कर लिया जाता है। योगियों का स्वाध्याय अर्थात् मन्त्रजाप का तरीका अपने ढंग का होता है। सिद्धयोग की परम्परा में श्वास-प्रश्वास जन्य नाद को ही श्रवण करने का विधान है। इस प्रकार श्वास प्रश्वास को लेते व छोड़ते हुये दिव्य भावों का स्मरण भी आवश्यक होता है। श्वास के साथ मिले दिव्य भाव ब्रह्मरन्ध्र में अमृत कणों से टकराकर निम्न भागों में-हृदय फेफड़ें आदि में रक्त के साथ मिलकर समस्त शरीर को दिव्य बना देते हैं। श्वास प्रश्वास के आवागमन के साथ मन जोड़ देने पर मन की चंचलता नष्ट हो जाती है। इसी का अभ्यास लम्बे समय तक करते रहने से साधक का देह सतोगुण से युक्त हो जाता है। उस स्थिति में भगवान् की यह उक्ति **'सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते'** अर्थात् सतोगुण की पूर्णरूप से वृद्धि हो जाने पर साधक के रोम-रोम से प्रकाश निकलने लगता है- चरितार्थ होती है। इस प्रकार सतोगुण से प्रकाश का उदय तथा प्रकाश से ज्ञान का उदय होता है।

प्राय: सभी सम्प्रदाय एवं मत में मन्त्र जाप को प्राथमिकता दी जाती है। वैसे जो पूर्व जन्मों के योगाभ्यासी रहे हैं उन्हें मन्त्र जाप की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। मन की एकाग्रता पा जाने पर साधक लयता की ओर बढ़ जाया करता है। वृत्ति स्थैर्य हो जाने पर साधक योग साधना का आनन्द प्राप्त करने लगता है और मन तत्वों में लय होता चला जाता है।

गुरूदेव भगवान अपने बच्चों को प्रात: ५ से ७ बजे तक मन्त्र जाप एवं ७ से ८ बजे तक ध्यानाभ्यास करने की आज्ञा दिया करते थे। वे कहा करते थे कि यदि कोई साधक साल-छ: महीने इस नियम पर चलेगा तो अवश्य ही वह अन्तर्मुखी बन जायेगा।

स्वाध्याय का अभीष्ट अध्यात्म लाभ मिले, इसके लिये साधक को योग विधि का अवलम्ब लेना चाहिये। तप पूर्वक किया गया स्वाध्याय लक्ष्य को प्राप्त करा देता है। हमारा मन एकाग्र हो, मन्त्र जाप ठीक प्रकार से चल पड़े इसके लिये पहली सीढ़ी यह है कि हम 'समकाया शिरोग्रीव' होकर दो-ढाई घण्टे लगातार बैठने के अभ्यस्त हो जायें। यह कार्य भी बहुत सरल नहीं है। इसके लिये साधक को अपने आहार-बिहार को संयमित रखना चाहिये। लम्बे समय तक बैठने के लिये आवश्यक है कि हमारे शरीर की नाड़ियों में मल जमने न पाये अत: साधक को योगासन, जीवन तत्व साधन, बन्ध मुद्रा एवं नेति आदि षटकर्म करते रहना चाहिये। संयमित सात्विक भोजन ही साधना में सहायक बनता है। नाड़ियों में मल एकत्रित हो जाने पर प्राण भी स्थिर नहीं हो पाते। इसको दूर करने के लिये भस्त्रिकादि प्राणायाम आवश्यक है। इस प्रकार शरीर शोधन के पश्चात ही स्वाध्याय में मन लगता है तथा इसका फल भी मिलता है।

हमारे पूर्वाचार्यों, योगियों तथा सन्तों ने स्वाध्याय की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल दिया है। कई सम्प्रदायों में स्वाध्याय को 'नाम व सुमिरन' के नाम से पुकारा जाता है। वस्तुत: स्वाध्याय से ही साधक के अन्दर दैवी सम्पदा का विकास होता है व आसुरी सम्पदा नष्ट होती चली जाती है। स्वाध्याय के पुण्य प्रभाव से ही योगी सिद्धगुरू को चरण शरण मिल पाता है। जब तक सद्‌गुरू न मिले साधक को स्वाध्यायरत रहना चाहिये। पुण्य अर्जन के सर्वश्रेष्ठ उपायों में स्वाध्याय ही श्रेष्ठतम है।

हिमालय के योगी भी समाधि से उठने के बाद सत्संग व स्वाध्याय किया करते हैं। गीता में स्वाध्याय को भगवान ने ज्ञान यज्ञ भी कहा है। स्वाध्याय ही समाधि का जनक है। आध्यात्म के प्रवेश का मुख्य द्वार स्वाध्याय ही है इसलिये आत्मकल्याणकामी व्यक्ति को चाहिये कि वह स्वाध्याय के पथ पर आरूढ़ होकर आत्मलाभ की ओर बढ़ता चला जाये। ❋❋❋

जो व्यक्ति आत्मा या चित्त में नित्य रहने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहंकार को वश में कर लेता है वह जितेन्द्रिय पुरुष पाप कर्मों में लिप्त ही नहीं होता।

औपनिषद योग और गोरखनाथ की योग-साधना

-डा० राधेश्याम दुबे

नाथ मार्ग में अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, कायसिद्धि के लिए नाथयोगियों ने योग को उपाययोग के रूप में ग्रहण किया। नाथयोगी अथवा गोरखनाथ हठयोग की साधना को प्रमुखता देते हैं। कुछ पूर्ववर्ती उपनिषदों और कुछ प्राचीन परवर्ती योगोपनिषद् में उपदिष्ट साधनाओं की परम्परा का विकास यहाँ देखा जा सकता है। गोरखनाथ ने शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया है और बताया है कि इनके अभ्यास से शारीरिक अवयवों, नाड़ियों, इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण संयम स्थापित किया जा सकता है। योग को प्राणायाम परायण कहा जा सकता है। सामान्यतः हठयोग से तात्पर्य है बलपूर्वक योग साधना में सिद्धि प्राप्त करना-**"हठेन बलात् कारेण योगसिद्धिः"**। सिद्धिसिद्धान्त पद्धति में बताया गया है कि 'ह' सूर्य और 'ठ' चन्द्र का योग हठयोग है। 'हठ' में 'ह' प्राणवायु है एवं 'ठ' अपानवायु है। इस प्रकार प्राणवायु एवं अपानवायु का योग हठयोग है अर्थात प्राणायाम द्वारा वायु का निरोध करना ही हठयोग है। पिंगला और इड़ा का योग भी हठयोग है अर्थात पिंगला नाड़ी सूर्य है और 'इड़ा' चन्द्र है। इस रूप में इड़ा और पिंगला को रोककर सुषुम्णा नाड़ी द्वारा प्राणवायु के संचालन को भी हठयोग कहते हैं। पुनः हठयोग से तात्पर्य 'रजस' और 'रेतस्' के योग से भी है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बिन्दुरज सम्बन्धी यह साधना एवं हठ की व्याख्या विचार प्रधान है।

शास्त्रानुसार नाड़ी-मण्डल द्वारा शारीरिक अवयवों की क्रियायें ज्ञान, भावना, इच्छा एवं क्रिया तत्वों के सभी कार्य, आंतरिक चेष्टाएँ सभी प्रकार की स्थिति में भी संयमित-नियोजित होती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा, ये तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं, जिनसे ये नाड़ी-मण्डल सम्बद्ध एवं शासित है। सुषुम्णा पीठ के मध्य स्थित है, जिसकी बायीं एवं दाहिनी ओर क्रमशः इड़ा और पिंगला नाड़िया हैं। ये दोनों विशेष बिन्दुओं पर सुषुम्णा से मिलती हैं। उक्त मिलन बिन्दु को चक्र कहते हैं। श्वास-इन्द्रियों से अत्यधिक सम्बद्ध इन दोनों नाड़ियों द्वारा श्वास-क्रिया संचालित होती है। श्वास-क्रिया, इड़ा-पिंगला का संचालन प्राणशक्तियों एवं नाड़ियों की गतिविधियाँ आदि सभी नैसर्गिक रूप में संपादित होती रहती हैं। शरीर के भीतर होने वाली प्रायः सभी महत्वपूर्ण क्रियायें सामान्यतः हमारे नियन्त्रण एवं इच्छा से ही नहीं, स्वतः होती हैं। इन सभी को अपनी इच्छाशक्ति और विवेक से संयमित करना तथा इनमें पूर्ण सुखद सामंजस्य एवं एकता स्थापित करना ही हठयोग का लक्ष्य है। इड़ा और पिंगला की सुषुम्णा से, प्राण और अपानवायुओं की जीवन शक्ति के केन्द्र बिन्दु से, बिन्दु और रज को सम्पूर्ण मानसिक शारीरिक शक्ति के केन्द्र-बिन्दु से और अन्ततः चेतना की उच्चतम स्थिति में शिव और शक्ति की एकता स्थापित करना हठयोग की साधना का अन्तिम साध्य है।

पातंजल योग अष्टांग योग है, लेकिन गोरखनाथ का योग षडंगयोग है, जिसमें पतंजलि के यम-नियम को छोड़कर आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की गणना की जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यम-नियम को सामान्यतः अनिवार्य समझकर गोरखनाथ ने उन्हें छोड़ दिया है, क्योंकि विश्वजनीन नैतिकता से इनका सम्बन्ध है। पातंजल के पाँच यम और पाँच नियम के स्थान पर नाथ योगी दस यम और दस नियम की बात करते हैं। दस यम हैं–अहिंसा, सत्यता, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार और शौच। आत्मसंयम की ये दस विधियाँ यम कहलाती हैं। ऐसे ही नियम भी दस हैं, तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त वाक्य श्रवण, ह्री, मति, जप और हुत।

परवर्ती उपनिषदों में भी आसनों का विस्तार है। षडंगयोग के अन्तर्गत आसन प्रथम अंग है। योग साधना में चार आसन महत्वपूर्ण माने गये हैं– सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन। इनमें सिद्धासन सर्वोत्तम है। उपर्युक्त आसनों के विधिवत अभ्यास से नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं और शरीर प्राणायाम एवं मुद्रा के अभ्यास योग्य बन जाता है। प्राणायाम में प्राणवायु को नियंत्रित किया जाता है, जिसमें पूरक, कुम्भक और रेचक ये तीन क्रियायें होती हैं। प्राणायाम के साथ महामुद्रा, महाबन्ध और महावेध अर्थात महामुद्रा, नभोमुद्रा, खेचरीमुद्रा, योनिमुद्रा, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध, वज्रोली सहजोली, अमरोली की भी साधना की जाती है। गोरख संहिता, योगबीज आदि ग्रन्थों में प्राणायाम के साथ इनका वर्णन सम्बद्ध भाव से किया गया है। प्राणायाम ओंकार साधना एवं अजपाजप से भी सम्बद्ध है। गोरक्षग्रन्थों में ओंकार साधना का विस्तार से वर्णन है। सभी प्रकार के बाधक तत्वों से ध्यान को हटाने की प्रक्रिया है– प्रत्याहार। जीवात्मा का निवति दीप की तरह धारण ही धारणा है। इसमें मन की स्थिरता प्राप्त होती है। धारणा की स्थिति धीरे-धीरे ध्यान में विकसित हो जाती है। ऐसी स्थिति में साधक सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों, पूर्व अवधारित मान्यताओं से अपने मन को मुक्त कर लेता है। सभी भूतों में समदृष्टि आयत हो जाती है। अतः ध्यान में चित्त पूर्णतः निश्चल हो जाता है। परम अद्वैतभाव को ही सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में ध्यान कहा गया है। ध्यान दो प्रकार का बताया गया है–सगुण और निर्गुण। सगुण ध्यान विभिन्न रंगों वाला होता है, जबकि निर्गुण ध्यान को केवल ज्ञानात्मक अनुभूत्यात्मक बताया गया है। समाधि चेतना की क्षोभ रहित और शान्तिपूर्ण स्थिति है। सर्व तत्वों की सम अवस्था समाधि में आयत होती है। समाधि में सभी वैयक्तिक सीमाएं अतिक्रमित हो जाती हैं और ऐसी स्थिति में व्यक्ति और विश्व का, 'स्व' एवं 'पर' का विरोध शामिल हो जाता है। यहाँ परम अनन्त ज्योति का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार इस षडंग योग की साधना के दो लक्ष्य हैं। पहला है–सिद्धकाया की प्राप्ति अथवा जीवन्मुक्ति। किन्तु यह गौण लक्ष्य है, दूसरा प्रधान लक्ष्य है, द्वैताद्वैतविवर्जित नामरूप में अवस्थान अर्थात पिण्डपद का परमपद में समरसीकरण।

गोरखनाथ की योगसाधना प्रथमतः हठयोग की साधना है, जो प्राणायाम प्रधान है। हठयोग की

साधना करने से सिद्धकाया की प्राप्ति होती है। इसके लिए पिण्ड की रचना का ज्ञान आवश्यक है। पायु और उपस्थ के मध्य जहाँ मेरुदण्ड समाप्त होता है, वहीं त्रिकोण चक्र में एक स्वयम्भू लिंग है। त्रिकोण चक्र ही अग्नि चक्र है। इसी स्वयम्भू लिंग को कुण्डलिनी सर्पिणी की तरह साढ़े तीन वलयों में लपेट कर स्थित रहती है। ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त महा कुण्डलिनी रूपी शक्ति का यह व्यष्टिरूप है। यह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मद्वार को अवरुद्ध कर सुषुप्त पड़ी रहती है। इसे जाग्रत करना और शिव से संयोग कराना योगी का काम है। कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करने से हठात मोक्ष का द्वार भी खुल जाता है। इसलिए भी इसे हठयोग कहते हैं। शरीर के अन्तर्गत बिन्दु अर्थात् शुक्र, वायु और मन, ये तीन परमशक्तिशाली हैं। इनमें से एक के वश में होने से पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रजः स्खलन का मार्ग है। इनका स्खलन घातक होता है। प्राणायाम द्वारा शुक्र या बिन्दु को स्थिर एवं ऊर्ध्वगमुख किया जाता है। इसके लिए नाड़ियों की शुद्धि आवश्यक है। षट्कर्म (धौति), वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपाल-भौंति आदि द्वारा हठयोगी नाड़ी-शुद्धि करता है। नाड़ी-शुद्धि से बिन्दु-स्थैर्य होता है और सुषुम्णा का मार्ग साफ हो जाता है। क्रमशः प्राण एवं मन भी चंचल हो जाता है, और कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर सहस्रार चक्र में शिवैक्य को प्राप्त करती है। इसके लिए योगी वज्रोली मुद्रा का अभ्यास करते हैं जिसमें पुरुष स्त्री के रज को और स्त्री के शुक्र को आकर्षित करके ऊर्ध्वमुख करती है। लेकिन गोरखनाथ की योगसाधना में यह ग्राह्य नहीं है। वस्तुतः पारमार्थिक अर्थ में ही वज्रोली मुद्रा की साधना ग्रहीत है।

नाड़ियों के शुद्ध होने पर प्राणादि वायु शामिल हो जाते हैं। आसन प्राणायाम से सुषुम्णा मार्ग उन्मुक्त हो जाता है। सुषुम्णा के दक्षिण में सूर्य नाड़ी है, और वाम भाग में चन्द्र नाड़ी है। प्राणायाम के क्रम में योगी चन्द्र सूर्य मार्गों को अवरुद्ध करके सुषुम्णा को मध्यवर्तिनी ब्रह्मनाड़ियों द्वारा कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करता है। कुण्डलिनी के ऊर्ध्वमुख होने पर प्राण स्थिर हो जाता है। साधक शून्य पथ से निरन्तर उस निखिल ब्रह्माण्डव्यापी अनाहतनाद को सुनने लगता है। कहा जाता है कि साधक साधना के क्रम में क्रमशः समुद्र-गर्जन, मेघगर्जन, भेरी झर्झर और मर्दल, शंख, घण्टा, का हल तथा अन्त में किंकणी, वंशी, वीणा की ध्वनि सुनता है। किन्तु जैसे-जैसे साधक के चित्त में स्थिरता आती जाती है, वैसे ही ये ध्वनियाँ शान्त होने लगती है, क्योंकि आत्मा उस समय स्वयं के स्वरूप को आयत कर जाती है। इस प्रकार प्राणवायु का निरोध करके हठयोगी कुण्डलिनी को जगाता है। कुण्डलिनी-जागृति होकर षट्चक्रों मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य और आज्ञा को क्रमशः भेदती हुई अन्तिम चक्र सहस्रार में पहुँचकर शिव से संगम करती है। स्पष्ट है कि प्राणवायु ही इस उद्बोध एवं शिवशक्ति-संगम का कारण है। अतः हठयोग में प्राणवायु के निरोध का विशेष महत्व है।

ऊपर गिनाए गये छह चक्र तो गोरखनाथ की साधना में मान्य हैं ही साथ ही सिद्ध सिद्धान्त

पद्धति में नव चक्रों का उल्लेख है जो क्रमशः इस प्रकार है– ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिचक्र, हृदयचक्र, कंठचक्र, तालुचक्र, भ्रूचक्र, ब्रह्मरन्ध्र-निर्वाणचक्र और आकाश चक्र।

उपर्युक्त योगसाधना के लिए गोरखनाथ ने गुरू को बहुत महत्व दिया है। गुरू की कृपा से ही पिण्डपद का परम पद में समरसीकरण संभव हो पाता है। वस्तुतः गुरू की कृपा से ही विश्रान्ति मिलती है। पिंड और ब्रह्माण्ड या व्यष्टि एवं समष्टि के ज्ञान के लिए अथवा इनके समरसत्व के लिए गोरक्षसाधन में गुरु के महत्व को पूर्णतया स्वीकार किया गया है। पिंड ब्रह्माण्डवाद के सिद्धान्त का षट्चक्र साधन, नाड़ी-साधन एवं नादानुसंधान से विशेष सम्बन्ध है। यह सिद्धान्त गोरखनाथ की साधना का मूलाधार है। जिसके आधार पर उन्होंने बाह्याचारों का खण्डन एवं अन्तस्साधना का मण्डन किया है। इस प्रकार गोरखनाथ की साधना के तीन मूल बिन्दु हैं–प्राणायाम, प्रधान 'गुरुवाद' और पिंडब्रह्माण्डवाद।

इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि गोरखनाथ की योगसाधना प्रथमतः प्राणायाम प्रधान हठयोग का साधन है। इसमें ब्रह्मचर्य पालन, बिन्दुस्थैर्य, संयम, राजयोग, गुरुवाद, पिंडब्रह्माण्डवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि हठयोग राजयोग का साधन है, वस्तुतः ज्ञानोपलब्धि राजयोग से ही सम्भव है।

तुलनात्मक विवेचन और निष्कर्ष–

गोरखनाथ की साधना का परिचय प्रायः अधिकांश उपनिषदों में प्राप्त हो जाता है। **कठोपनिषद्** में सुस्थिर इन्द्रियधारण की अवस्था को योग कहा गया है। कठोपनिषद कहती है कि जिस समय मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रिय स्थित हो जाती है, 'बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती वह परमगति की अवस्था है, जिसे गोरखनाथ ने भिन्न रूप में स्वीकार किया है। **श्वेताश्वेतरोपनिषद्** में मन द्वारा इन्द्रिय पर नियन्त्रण की बातें कहीं गयी हैं। यह उपनिषद् योगाभ्यास द्वारा कालरहित, अमर होने की बात करती है। इससे शरीर भी रुग्ण नहीं होता है, वृद्धावस्था नहीं आती और न असामयिक मृत्यु होती है। गोरक्षनाथ द्वारा मन पर नियन्त्रण एवं सिद्धकाय की जो चर्चा की गई है, वह श्वेताश्वेतरोपनिषद् के उक्त विचार के समान है। **मैत्री उपनिषद्** मूल एवं प्राचीन उपनिषदों में से एक है। इसमें षडंगयोग का विवेचन किया गया है और प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, तर्क, धारणा, समाधि– ये छः अंग हैं। गोरखनाथ के षडंग योग के अन्तर्गत आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि की गणना की गई है।

परवर्ती उपनिषदों के योग साधन एवं सिद्धान्त-विवेचन से यह स्पष्ट है कि अलग-अलग उपनिषद अपने ढंग से योग पर विचार करती हैं, फिर भी गोरखनाथ द्वारा विवेचित योग-साधन के प्रायः सभी तत्व विस्तार के साथ इन उपनिषदों में वर्णित हैं। अमनस्क योग, ओंकार-साधना अर्थात् प्रणव के रूप में नादानुसंधान, लययोग, मंत्रयोग, राजयोग, हठयोग, षडंगयोग, अष्टांग योग, प्राण-साधना द्वारा नाड़ी-शुद्धि, मन, प्राण और शुक्र को वश में करना, गुरू शिष्यवाद, पिंडब्रह्माण्ड वाद आदि सभी कुछ जो गोरक्षनाथ के विषय हैं, इन उपनिषदों में विवेचित हैं।

***

रचना

श्री भुवनेन्द्र झा

प्रभु अब तो दर्श दिखादो,
खोजत-खोजत आया तुम्हरे द्वारे अब न सतावो।। प्रभु।।

भटका फिरा जगत झंझट में,
गिर-गिर पड़ा चला जब मग में।
अबकी बार इस भवसागर से, नैया पार लगा दो।।प्रभु।।

रूप अनेकों धारण करते,
दु:खित जनों के दु:ख को हरते।
दीनानाथ दया कर अब तो, एक बार अपना लो।। प्रभु।।

कोई कहे तुम बसे गुफा में,
कोई कहे मिलते हो क्षण में।
मन मन्दिर में नित प्रति देखूँ, ऐसी लगन लगा दो।। प्रभु।।

जटाजूट सिर नयन विशाला,
उर उपवीत विटप बन माला।
प्रेम रूप तुम प्रेम करूँ मैं, ऐसा प्रेम जगादो।। प्रभु।।

कहते योगेश्वर प्रभु तुम हो,
सकल विश्व नायक विभु तुम हो।
सचराचर के अन्तर्यामी, आवो......आवो.....आवो।। प्रभु।।

देवों के हो महादेव तुम,
सिद्धों के भी महासिद्ध तुम।
किस विधि लीला गाऊँ तुम्हारी, अन्तर ज्योति जलावो।। प्रभु।।

अमृतालपुर छोड्यो जग में,
प्रगट भये प्रभु 'राम' 'चन्द्र' में।
'भुवनइन्द्र' के 'चन्द्र' प्रभु वह, 'मोहन' छवि दिखलावो।। प्रभु।।

* * *

परमार्थ के लिए योग

ले. उमेश्वर त्रिपाठी (पूर्वी चम्पारण)

युज् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर योग शब्द की निष्पत्ति होती है **"युज् भावादौ घञ्' कृत्वम्"** योग शब्द का अर्थ है-मिलन-संगम। हमारे ऋषियों ने आत्मा के भटकाव को रोककर परमात्मा में मिला देने के लिए जो उपाय खोजा, वह योग कहलाया।

महर्षि पतंजलि ने समाधि पाद-१ में लिखा है-**अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः** ८४ लाख योनियों के संस्कार को संचित कर चित्त सांसारिक भोगों के लिए बाध्य है, नहीं चाहते हुए भोग आते रहते हैं। भोग की ओर जीव का झुकाव नैसर्गिक है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग की ओर ले जाने का उपाय अभ्यास है।

वैराग्य का सम्बन्ध सांसारिकता से विमोह है। राग से रुखसत। मनुष्य राग में राम को भूल जाता है। सांसारिक चीजों से विराग लेकर राग को यदि राम के चरणों में लगा दिया जाय, तो जीव को आराम मिल जाता है। इसी सांसारिक राग से चित्त वृत्ति को हटाने का नाम योग है। भगवान् पतंजलि ने योग सूत्र में लिखा कि-

"योगश्चित्तवृति निरोधः"

अब प्रश्न उठता है कि निरोध क्या है ?

चित्त क्या है। बुद्धि-मन एवं अहंकार से भिन्न चित्त है। चित्त संस्कार को आत्मसात् कर भविष्य की यात्रा का कारण बनता है। चित्त संस्कार से रहित हो इसलिए योग की आवश्यकता है। जब तक चित्त में पूर्व संस्कार जन्य-पुण्य एवं पाप का लेश मात्र संसर्ग रहेगा, जीव की यात्रा चलती रहेगी। आवागमन दूर नहीं होगा। भागवत् में स्वयं भगवान् ने कहा है-

"भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं
कलेवरं काल जवेन हित्वा,
बुद्धि विशुद्धां सुरलोक गीतां
विताय मामेस्यति मुकुबन्धः"

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो यौगिक प्रक्रिया से जीव को ब्रह्ममय बना सकता है।

गीता में भगवान् ने अर्जुन से कहा है।

"आत्मनेनात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञः तदोच्यते।"

जीवात्मा को परमात्मा के स्वरूप में ले लेने के लिए स्थित प्रज्ञता अनिवार्य है। स्थित प्रज्ञ योगी ही हो सकता है।

रामानुजाचार्य को हनुमान् का अवतार कहा जाता है। आचार्य ने हनुमान् को महाजीव बताया है। यह जीव बिना हनुमान की कृपा के ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता है। हनुमान महायोगी हैं। भिद

स्वरूप है। जीव चंचलता की रस्सी में बन्दर बन कर माया में बँधा खेल खेलता है, हनुमन्तत्व की प्राप्ति के बाद योगी-ब्रह्म बन जाता है।

इसी क्रम में भगवान् के उपदेश को देखा जा सकता है-

यदा-यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

यह श्लोक बताता है परमात्मा ही आत्मा बनकर अवतरित होते हैं। परमात्मा की आत्मा किसी भी क्षण परमात्मा बन सकती है। जब अवतार के ईश्वर ब्रह्म हैं तब जीव को भी ब्रह्म ही माना जाना चाहिए। **"जीवो ब्रह्मैव नापरः"**

भगवान् शिव योगेश्वर हैं भगवान् कृष्ण योगीश्वर हैं। योगेश्वर एवं योगीश्वर को देखें। विध्या के देवता शिव ने जीव के उद्धार के लिए योग के विविध रूपों को दिया। योग को अपना कर मनुष्य योगी बना वहीं योग के माध्यम से योगीश्वर (राम) बन जाता है।

यह नामकरण-योग-योगी-योगेश्वर-योगीश्वर-ब्रह्म बनने के क्रमिक सोपान हैं। जहाँ योग वहाँ शिव। योग जानने वाला शिव स्वरूप योगी बन जाता है। योगी का योगीश्वर बनना लाजिम है। जैसे कई बिन्दुओं को मिला देने से एक लकीर (रेखा) बन जाती है-वैसे ही योग-योगी-योगेश्वर-योगीश्वर बन जाना एक ध्रुव सत्य है।

योग में 'त्राटक' एक माध्यम है। योग का अभ्यास करने वाला जब त्राटक करता है, तब वह चन्द्रमा में, सूर्य में अपने को स्थापित करता है। त्राटक जब सिद्ध होता है तो योगी सर्वत्र सूर्य एवं चन्द्र का दर्शन करता है। यही क्रम है कि जीव योग के माध्यम से ब्रह्म बन जाता है। 'कीटभ्रमर न्याय' इसी की पुष्टि करता है।

जीव का ब्रह्म बन जाना एकत्व का बोध है। जब जीव ब्रह्म बन जाता है, तब योग अपने चरम लक्ष्य को पा लेता है। सारे भेद समाप्त हो जाते हैं।

नारद जी, हनुमानजी एवं आदि शंकराचार्य ने तो अपने योग के द्वारा सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर रूप को जीव पा सकता है।

अतः परमार्थ की प्राप्ति का एक ही साधन है-योग।

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।

* * *

> *ज्ञान से भय दूर होता है, तप से गौरव एवं ब्रह्म की प्राप्ति होती है। गुरु, सेवा से ज्ञान-लाभ होता है। सुख-दुःख में समभाव रखने से शान्ति मिलती है।*

हे गुरुदेव ! तुम्हें कोटिशः नमन

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

गीताकार स्पष्ट कहते हैं-

'नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।'

अर्थात् जिसका प्रारम्भ कर दिया जाता है, उसका कभी नाश नहीं होता और न ही परिणाम में कोई उलट फेर होता है।

बीज जो आज बोया जा रहा है, उगने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यर्थ नहीं गया, कुछ समय पश्चात् धरातल पर फल-फूल, सुगन्ध और छाया लेकर प्रकट हुआ। मन से उत्पन्न सुख-दुःख से युक्त संवेदनाओं के अन्तर्गत जो भी कर्म किये जाते हैं वे मनुष्य के द्वारा कर्म बीज के रूप में कर्माशय की गहराई में बो दिये जाते हैं। कर्माशय में पड़े यह बीज एक निश्चित समयावधि के उपरान्त अपने कर्मानुसार शुभाशुभ फल लेकर मनुष्य की देह रूपी भूमि पर प्रकट हो जाते हैं। आदिकाल से ही मनुष्य के द्वारा भाँति-भाँति के अच्छे-बुरे कर्म किये जाते रहे हैं। जो अच्छा-बुरा कर्मफल दिखलाकर चले गये और इसी दौरान में मनुष्य के द्वारा युगों-युगों में नये-नये कर्म भी किये जाते रहे हैं। जिनके शुभ-अशुभ परिणाम वर्तमान में प्रकट हो रहे हैं शेष भविष्य में होते रहेंगे। भविष्य में बोये जाने वाले कर्मबीज आगे आने वाले भविष्य के अनन्तकाल तक प्रकट होते रहेंगे। इस प्रकार पुराने संस्कारों के भोग काल में ही मनुष्य द्वारा आगे के लिये नये कर्मबीज संस्कार तैयार कर लिए जाते हैं। कर्म विज्ञान के क्षेत्र में यही प्रक्रिया सृष्टि में सर्वत्र, प्रत्येक व्यक्ति के लिए विद्यमान है। उक्त विधान के अनुसार सृष्टि काल मानवकृत कर्मों के शुभाशुभ फलों को मार्ग देता हुआ अपने पथ पर आगे बढ़ता चला जा रहा है।

यदि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में कोई विशिष्ट योग्यता या उपलब्धि दृष्टिगोचर होती है तो इस प्रकार के कर्मफलों के पीछे उसके पूर्वजन्मों के कर्मबीज संस्कार ही होते हैं जो उसे उक्त विशिष्टताओं-उपलब्धियों को अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील बनाते हैं और अन्ततः अभीष्ट फल लेकर आते हैं।

माँ गायत्री के परम उपासक तपोनिष्ठ, वेदों में वर्णित प्राचीन 'यज्ञ' परम्परा के महत्व को संस्कार के सामने रखने वाले विश्वविश्रुत आचार्य श्री राम शर्माजी ने इस विषय में एक उदाहरण के साथ अपने विचार निम्न प्रकार से प्रस्तुत किये हैं-

''यदि संसार के सफलतम और प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों पर 'जाति-स्मरण' का प्रयोग किया जाय तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि उनकी उपलब्धियाँ एक जीवन की देन नहीं है वरन् उसके पीछे पिछले कई वर्षों की साधनाशक्ति पूँजी के रूप में जुड़ी हुई है। उसी पूँजी से सफलता

के वर्तमान शिखर छुए जा सकते हैं।

परम् पूज्य आचार्यजी ने हालीवुड के प्रख्यात अभिनेता और संगीतकार ग्लैनफोर्ड का उदाहरण इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि उक्त विशिष्ट व्यक्ति पर जाति-स्मरण के प्रयोग किये गये। प्रयोग कर्त्ता ने पूछा कि आप कौन हैं तो फोर्ड ने बताया कि मैं संगीत शिक्षक हूँ। इस पर एक पियानों मँगवाया गया तो उन्होंने ऐसी धुन निकाली जो उस समय कहीं प्रचलित ही नहीं थी। वह उन्नीसवीं सदी की धुन थी।

प्रसंग के महत्व में यह बात गौर करने की है कि फोर्ड अपने पूर्व जन्म में संगीत शिक्षक थे हजारों बच्चों को संगीत सिखाने का पुरुषार्थ उन्होंने किया यही कर्मबीज बनकर उनके नये जन्म में उदित हुआ जिसके परिणाम स्वरूप वे एक प्रख्यात अभिनेता और संगीतकार बन सके।"

ये तो 'जाति-स्मरण' जैसे मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से कर्मफलों के सिद्धान्तों को समझने की बात रही। किन्तु योग साधनाओं के अन्तर्गत 'ध्यान योग' के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने पिछले जन्मों को देख सकता है। शंका उत्पन्न होने पर प्रश्न भी कर सकता है। आकाशवाणी से या 'इष्ट' के मुख से अपनी शंकाओं के उत्तर प्राप्त कर सकता है। घोर कलिकाल में ध्यान की ऊँचाई तक पहुँच पाना हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। फिर भी अनेक लोगों ने पूज्य गुरुदेव भगवान के परमानुग्रह स्वरूप उत्कृष्ट ध्यान स्थितियों को प्राप्त किया है। योग योगेश्वर के महान साधनों द्वारा पूर्व जन्मों को ध्यान में देखने की बातें प्रकाश में आई हैं। पूज्य ताऊ गुरुदेव श्री गोपालानन्द जी ने एक प्रमुख घटना के दौरान ध्यान में देखा कि पूर्वजन्म में वे एक सामान्य से सत्यनारायण कथा वाचक ब्राह्मण थे। यही आजीविका थी उनकी। घर-घर जाकर निष्ठापूर्वक सत्यनारायण की कथा कहते थे। जो कुछ भी मिल जाता सदा उसी में सन्तुष्ट रहते। पूर्वजन्म के इस पुरुषार्थ के फलस्वरूप ही वे वर्तमान जन्म में संत प्रवृत्ति वाले हुये। और सद्गुरु चरण-कमलों को प्राप्त करने के अधिकारी हुए।

'पूर्वजन्मों का ज्ञान' हमारे आत्मोत्थान के लिए, एक अच्छा मार्गदर्शक इसलिए है क्योंकि सबसे पहले तो हमें पूर्वजन्म की सत्यता पर दृढ़ विश्वास हो जाता है। अनेक पढ़े-लिखे लोग प्रेतात्माओं के अस्तित्व में इसीलिए विश्वास नहीं करते क्योंकि पूर्वजन्म की मान्यताओं में उनकी सहमति संशयात्मक होती है। दूसरा लाभ चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने की सत्यता पर विश्वास दृढ़ होने के रूप में है। तमाम लोग पूर्वजन्म की मान्यता इस स्तर पर तो स्वीकार करते हैं कि मनुष्य का अगला जन्म मनुष्य योनि में ही होता है। किन्तु जब उन्हें यह बताया जाता है कि तुम अपने पिछले जन्मों में कुत्ता, बिल्ली, शूकर, गाय, भैंस आदि रहे हो तो सुनते ही उनमें तुरन्त घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है। इससे बचने के लिए वे चौरासी लाख योनियों के सिद्धान्त की बल पूर्वक अवमानना करते हैं। तीसरा लाभ, कर्म सिद्धान्त (जैसी करनी वैसी भरनी) के अन्तर्गत शुभाशुभ कर्म संस्कारों के अमिट प्रभावों की मान्यता को, मन के सभी भ्रमों और संशयों को

समाप्त करते हुये, स्वीकार करता है। साधक को जब आत्मबोध होता है कि फलाँ कर्म के फल स्वरूप मुझे फलाँ दारूण दुःख झेलना पड़ा अथवा फलाँ-फलाँ निकृष्ट भोगयोनियों (चौरासी लाख योनियाँ) में जाना पड़ा तब वह कर्म सिद्धान्त पर गहराई से विश्वास करता है और कर्मों के अच्छे-बुरे फल को ध्यान में रखते हुये बड़ी सावधानी पूर्वक कल्याणकारी कर्म ही करने की चेष्टाएँ करता है जो अपने लिए भी शुभ हों और उससे दूसरों का भी कल्याण होता हो। भगवान बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त होने के पीछे उनका सौजन्मों का दर्शन था जिसे उन्होंने अपने तीव्रतम तपश्चर्या के फलस्वरूप चित्त वृत्तियों का निरोध करते हुये अपनी ध्यानावस्था में देखा था। उन्होंने देखा कि वे अपने इन जन्मों में अनेक पशु-पक्षियों की योनियों में रहे। शूकर जैसी घृणास्पद योनि में भी उन्होंने स्वयं को देखा। जो कुछ भी थोड़ी-बहुत मोह-आसक्ति उनके चित्त में शेष रह रही थी वह सब इन पूर्वजन्मों के ज्ञान से पूर्णतः नष्ट हो गयी। संसार सारा 'बुद्ध' को दुःख की महान अग्नि में सुलगता दृष्टतव्य हुआ। महात्मा बुद्ध को संसार से दृढ़ वैराग्य हो गया। फलस्वरूप समग्र संसार को शान्ति और प्रेम का अनूठा पाठ पढ़ा सके। तो इस महान सफलता की उपलब्धि में पूर्वजन्मों का ज्ञान ही विशेष महत्वपूर्ण रहा।

चौथा जो महत्वपूर्ण लाभ पूर्वजन्म के ज्ञान से साधक को मिलता है वह साधना को आगे बढ़ाने में पिछले पुरूषार्थ बल की प्रेरणा के महत्व को समझने में सहायता करता है। इस संदर्भ में वर्तमान जन्म की साधना वहाँ से शुरू होती है जहाँ साधक ने पिछले जन्म में छोड़ी थी। इस ज्ञान से साधक को पूर्वकृत पुरुषार्थ कर्मों के अमिट बल का वर्तमान जन्म पर पड़ने वाले प्रभावों-प्रेरणाओं का ज्ञान होता है। अर्थात पुरुषार्थ बल की महिमा का ज्ञान होता है।

पूर्वकृत पुरुषार्थ कर्मों की सत्प्रेरणायें वर्तमान जन्म में मिलती हैं अथवा नहीं, इन रहस्यों पर उस समय विश्वास किये बिना नहीं रहा जाता जब हमें ज्ञात होता है कि इन तथ्यों को बिना ध्यान योग की सहायता के ही अनेकों महान विदेशी महापुरुषों ने भी अपने जीवन में अनुभूत किया और दुनियाँ को यह विश्वास दिलाया कि किसी व्यक्ति को महान बनाने में उसके सत्कर्म ही अन्तःप्रेरणा के द्वारा उसे उचित राह दर्शाते हैं। पूज्य आचार्य श्रीराम शर्मा जी इसी संदर्भ में एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार आयरलैण्ड के विश्वविख्यात कवि विलियम बट्लर यीट्स का उदाहरण पूर्वजन्म के पुरुषार्थ बल के सम्बन्ध में पूर्णतया प्रमाणिक और सन्देह से परे हैं। वे कहते हैं कि यीट्स ने काव्य, नाटक, निबन्ध और साहित्य की अन्य विधाओं में लगभग ४० पुस्तकें लिखीं। एक आत्मकथा में यीट्स ने स्वयं स्वीकार किया कि–''साहित्य लेखन कार्य के लिए एकान्त वातावरण में एकाग्रचित होकर बैठना अति आवश्यक है। मैं जब कभी अपने कमरे में अकेला होता हूँ तो मुझे कुछ होने लगता है। अनेक ज्ञानपरक रहस्यों का स्वतः ही बोध होने लगता है जिन्हें मैं अपने काव्य लेखन की विलक्षण योग्यता में रंग देता हूँ। मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि किसी भी व्यक्ति के अन्तः व्यक्तित्व की परिचालना मुख्यतः उसके पूर्वजन्म के संस्कार ही करते हैं। मेरी अवचेतना में निहित मेरे जन्म-जन्म के संस्कार मुझे समय-समय पर चेतावनी भी देते हैं और परामर्श भी।''

अतः जीवन सतत असफलताओं के कारण यदि नैराश्यपूर्ण हो गया है तो अकर्मण्यता लाद कर जीवन को आलस्य-प्रमाद और रोगों का घर मत बनने दीजिए। जैसे भी हो कुछ क्षण पुरुषार्थ कर्म के लिए अवश्य निकालने चाहिए। समय को व्यर्थ मत जाने दीजिये। ईश्वर ने समय (काल) की रचना विषय-भोगों में खर्च करने के लिए अथवा सोकर, आलस्य में पड़े रहकर व्यर्थ गवांने के लिए नहीं की है। 'समय' की उत्पत्ति में उसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहा प्राणी जन्म-जन्म में थोड़ा-थोड़ा अर्जित करके संसार के बन्धन से स्वयं को मुक्त करने का प्रयत्न करें। पुरुषार्थ कर्म लौकिक पारलौकिक दोनों ही प्रकार के सुखों को प्रदान करने में सक्षम होता है। अकर्मण्य रहकर अथवा धनिकों द्वारा भोग-विलास के जीवन में ईश्वर द्वारा प्रदत्त निःशुल्क 'समय' रूपी रत्न का दुरूपयोग नहीं करना चाहिए। गुरुदेवजी कहा करते थे कि समय का दुरूपयोग करने वाला ईश्वर की दृष्टि में सबसे बड़ा अपराधी होता है। इस जन्म में कुछ नहीं मिला तो कोई बात नहीं, हर व्यक्ति में कोई न कोई विलक्षण योग्यता अथवा विशिष्ट गुण होता ही है। उसी के द्वारा कार्य की प्रतिष्ठा-अप्रतिष्ठा का विचार न करते हुये जरूरतमन्द लोगों की अपने प्राण गवां कर भी सेवा करनी चाहिए ताकि आगे के जन्म तो सुधर जायें। वर्तमान जन्म जैसी निराशा न उठानी पड़े। यही पुरुषार्थ है।

परम् पूज्य गुरुदेव जी ने अपने पूर्वजन्म को अपने आनन्द-कन्द गुरुदेवजी (हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभु श्रीरामलाल जी) की आज्ञा पाकर गंगाजी के किनारे आसन लगाकर ध्यानावस्था में देखा था। पूज्य गुरुदेव भगवान ने अपने पूर्वजन्म में गण्डकी नदी के किनारे, गण्डकी के पूर्वांचल पुल पर स्थित एक कुटिया में रहकर घोर तप सैंकड़ों वर्ष किया था। पूज्य गुरुदेव जी का शरीर कठिन साधना तपश्चर्या के कारण अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण, वयोवृद्ध और दाड़ी-जटाओं वाला था। उनका प्रबल कृष्ण प्रेम पूर्वजन्म की साधना में ही परिपक्वता दृढ़ता प्राप्त कर चुका था। योगेश्वर श्री कृष्ण के परम् चिन्तन से विमुख होने के लिए, उनके चित्त में तृणमात्र भी गुंजाइश नहीं थी। पूज्य गुरुदेव जी ने अपने पूर्व जन्म के वर्णन के अन्तर्गत स्वयं लिखा है-''मेरी कुटिया के साथ ही लगा हुआ योगेश्वर श्री कृष्ण जी का मन्दिर भी मुझे ध्यानावस्था में दिखलायी पड़ रहा था।'' श्री गुरुदेव जी की चित्त भूमि में कृष्ण भक्ति के संस्कारों की जड़ें कितनी गहराई तक जमी हुई थीं,। यह उनके योगमय वर्तमान जन्म के अनुपम घटना चक्रों से स्पष्ट हो जाता है। पूर्वजन्म के कृष्णप्रेम साधना बल ने उन्हें वर्तमान जन्म में अपनी सत्प्रेरणाऐं दे देकर उन्हें साक्षात कृष्ण ही बना दिया था। सन् १९८९ को बसन्त पंचमी के दिन माघमेला (प्रयागराज) के शुभ अवसर पर जब गुरुदेवजी, इस मेले में ही उपस्थित वृन्दावन वाले महायोगी देवरहा बाबाजी के दर्शनार्थ अपनी शिष्य मण्डली के साथ, उनके मचान पर पहुँचे तो वहाँ उपस्थित लोगों ने जो कुछ भी देखा वह अत्यन्त आश्चर्यजनक और कल्पनातीत था। उन्होंने अपने शिष्यों को, भगवान कृष्ण के मनमोहक वस्त्रों को प्रदान करके योगिराजजी (हमारे पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) का श्रृंगार करने का आदेश दिया। उनके शिष्यों ने पूरी श्रद्धा और तन्मयता के साथ पूज्य श्री गुरुदेवजी का अत्यन्त मनमोहक कृष्णमय

श्रृंगार किया। कितने धन्य रहे होंगे ये बालक जिन्हें गुरूदेवजी का कृष्णमय श्रृंगार करने का अवसर मिला। फिर महायोगी पूज्य श्री देवराह बाबाजी ने स्वयं पूज्य गुरूदेव जी का साक्षात कृष्णमय दर्शन करते हुये प्रणाम किया। इस घटना चरित्र से क्या नहीं लगता कि पूज्य बाबाजी सारे संसार से कहना चाहते हों- नादान दुनिया वालों ! मत भटको पहचान लो यही हैं तुम्हारे मनमोहन योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र। जब पूज्य गुरुदेव जी को कोई गुरूभाई भगवान श्री कृष्ण के भजन सुनाता था तो उनका रोम-रोम आनन्द से पुलकित हो उठता था। उनका अनूठा कृष्ण प्रेम ही उन्हें श्री महाप्रभुजी के पावन चरण कमलों तक खींचकर लाया। तभी तो आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी के प्रथम दर्शनों के अवसर पर वे भोले पन से पूछने लगे थे-गुरुजी, मुझे ऐसा योग सिखाइये जिससे भगवान श्री कृष्ण चटपट ही मिल जायें।

हे प्रभु ! कितनी व्याकुलता-अकुलाहट रही होगी हमारे गुरूदेव जी के अन्दर, यह उनके श्रीमहाप्रभुजी के समक्ष निवेदन करने के ढंग से ही स्पष्ट हो जाता है। यह सब पूर्व जन्म की कठिन साधना के पुरुषार्थ बल का ही परिणाम सो था। जिसने १४-१५ वर्ष के गुरूदेव जी के अन्दर श्रीकृष्ण दर्शन के लिए इतनी छटपटाहट भर दी थी। मीरा को उनकी माता जी के द्वारा मिलने वाली कृष्ण भक्ति की प्रेरणा की तरह, श्री गुरूदेव जी को अपनी पूज्य माता जी से ऐसी कोई प्रेरणायें प्राप्त नहीं हुई थी। 'आर्य समाज' में प्रबल आस्था रखने वाले उनके पूज्य पिताश्री दृढ़तम आर्यसमाजी विचारों के थे। उन्होंने अपने बालक के अन्दर जीवन को महान बनाने वाले संस्कारों को कूट-कूट कर भर दिया था। किन्तु पूज्य गुरूदेव जी को उन्होंने कभी श्रीकृष्ण भक्ति के लिये भी प्रेरित किया हो ऐसा कहीं स्पष्ट पढ़ने में या सुनने में नहीं आया। एक स्थान पर गुरूदेव जी को पुनः पढ़ने के लिए मनाने हेतु वे अवश्य यह कहते नजर आये हैं-'बेटा ! भगवान कृष्ण में प्रेम रख किन्तु पढ़ाई भी तो बहुत जरूरी है यदि अब नहीं पढ़ेगा तो तू मूर्ख ही रह जायेगा।' फिर इतनी छोटी सी उम्र में किसने भर दी उनके हृदय में श्री कृष्ण के प्रति विलक्षण भक्ति और योग विद्या सीखने के दृढ़ संस्कार।

वस्तुतः ये सब उनकी पूर्वकृत साधना के संस्कारों के ही तो शुभ परिणाम थे जो पूज्य गुरूदेवजी को योग विद्या सीखने की प्रेरणा दे रहे थे।

श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे महायोगी जी से किसी ने पूछ लिया था कि ईश्वर प्राप्ति के लिए कितनी लगन व तत्परता चाहिए। तो उन्होंने प्रत्युत्तर में कहा कि पानी से बाहर निकली हुई मछली पुनः पानी में जाने के लिए जितना छटपटाती है यदि उतनी ही छटपटाहट किसी में ईश्वर दर्शन की हो तो वह ईश्वर को प्राप्त करने में अवश्य ही सफल हो जाता है। क्या श्री गुरूदेव भगवान के बाल जीवन में श्री कृष्ण दर्शन के लिए इस प्रकार की छटपटाहट नहीं थी ? प्रत्युत्तर में प्रत्येक गुरु भक्त जिसने गुरूदेवजी को बहुत करीब से देखा है जिसने पूज्य गुरुदेव जी से गहरा प्यार करके उनकी भावनाओं को मार्मिकता से समझा है तो वह कहेंगे कि पूज्य गुरूदेवजी के अन्दर मछली की तड़प से कहीं ज्यादा योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्रजी को प्राप्त करने की तड़प और छटपटाहट थी। यह निम्न वर्णित उनके बाल-चरित्रों से स्पष्ट हो जाता है।

पूज्य पिता श्री देवीराम जी ने अपने बालक 'चन्द्र' को किसी प्रकार लाहौर में डी.ए.वी. कालेज के संस्कृत विभाग के अन्तर्गत श्री मद्दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय में प्रवेश करा दिया था। उक्त विद्यालय के प्राचार्य, आचार्य श्री दीनबन्धुजी थे पूज्य गुरुदेव इस विद्यालय में मात्र ढाई-तीन वर्ष ही अध्ययन कर सके। किन्तु वे इस विद्यालय के कण-कण से जो स्नेह पूर्व अपूर्व सम्बन्ध रखते थे उसे जीवन पर्यन्त भुला नहीं सके बल्कि बढ़ते जीवन के साथ-साथ, विद्यालय की महानता से उनके भावनात्मक मधुर सम्बन्ध और भी ज्यादा प्रगाढ़ होते चले गये। पूज्य गुरुदेव जी ने इस विद्यालय की महान शिक्षा पद्धति और अनुशासन की जो उजली-उजली मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है उससे ज्ञात होता है कि विश्व में शायद ही कोई विद्यालय, शिक्षा और अनुशासन के धनी इस अपूर्व विद्यालय के समानान्तर आने की योग्यता रखता हो। विद्यालय के प्राचार्य बालक 'चन्द्र' से बेहद स्नेह करते थे। इसके कई कारण थे। प्रथम पूज्य गुरुदेव जी (बालक 'चन्द्र') ने अपने उत्कृष्ट अनुशासन और सदाचार में रहकर विद्यालय के नियमों का पालन किया था। इस प्रकार उन्होंने श्री आचार्य जी का अन्तःकरण जीत लिया था। पूज्य गुरुदेव जी ने उन्हें कभी शिकायत का मौका नहीं दिया जबकि अन्य विद्यार्थी आचार्य जी के मन के विरुद्ध, इतने कड़े अनुशासन में रहकर भी कुछ न कुछ हल्का-फुल्का उत्पात कर ही दिया करते थे। दूसरा कारण-बड़ी दूर-दूर के बच्चे श्री आचार्य जी से निज माता-पिता जैसा प्यार पाकर संस्कृत की उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। आचार्य जी अपने विद्यालय के बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति बड़े सजग व सावधान रहते थे। सप्ताह में दो बार प्रत्येक ब्रह्मचारी के स्वास्थ्य का निरीक्षण डाक्टरों द्वारा कराया जाता था। पूज्य गुरुदेव तीन वर्ष के दौरान किसी भी प्रकार से अस्वस्थ नहीं हुये इस बात से श्री आचार्य जी उनसे बेहद प्रसन्न थे।

तीसरा कारण-एक बार सनातन धर्म विद्यालय के काफी छात्र आचार्य श्री विश्वबन्धुजी के विद्यालय में प्रतियोगिता करने आये। उनमें बहुत बड़े उच्च श्रेणी के एक शास्त्रीजी भी थे। पूज्य आचार्यजी ने उनसे बार-बार कहा-'आप क्यों नहीं बोलते ? आपको भी बोलना चाहिए।' शास्त्रीजी ने संस्कृत में पूछा-'यहाँ मेरा प्रतियोद्धा कौन है ?' शास्त्री के भाव में अहमकृति थी, सरलता, प्रेम और गम्भीरता की मूर्ति श्री आचार्य जी इस बात को तुरन्त जान गये। उन्होंने तुरन्त हमारे पूज्य गुरुदेव जी की ओर इशारा करते हुये कहा- यह बालक आपका प्रतियोद्धा है। आप बोलिए यह आपके प्रश्नों के उत्तर देगा। शास्त्री ने बड़े आश्चर्य में पड़कर कहा-'यह १४-१५ वर्ष का बालक मेरा प्रतियोद्धा कैसे हो सकता है ? आचार्य जी का संकेत पाते ही पूज्य गुरुदेव जी तत्काल अपने स्थान से खड़े हो गये और उन्होंने संस्कृत में शास्त्रीजी के साथ विवाद आरम्भ कर दिया। इतनी कम आयु में पूज्य गुरुदेव जी की इस विलक्षण योग्यता को देखकर विद्यालय में उपस्थित सभी शिक्षाविद् महापुरुषों को महान आश्चर्य हुआ। पूज्य गुरुदेवजी के अन्य साथी भी गुरुदेव जी का बराबर साथ दे रहे थे। इस दिव्य बालक (पू. गुरुदेवजी) ने शास्त्रीजी के प्रश्नों के संस्कृत भाषा में धारा प्रवाह उत्तर दिये। उच्चारण एकदम शुद्ध था। पूज्य गुरुदेवजी की अल्पायु में इतनी ऊँची योग्यता को देखकर सभी उपस्थित जन आश्चर्यचकित थे। पूज्य गुरुदेवजी ने अपनी अद्भुत योग्यता

के प्रदर्शन से शिक्षित समाज में श्री आचार्य जी का मस्तक गर्व से ऊँचा उठा दिया था। श्री आचार्य जी की रात-दिन की कठिन मेहनत और ब्रह्मचारियों की अपूर्व योग्यताओं से विद्यालय सारे पंजाब में बड़ी तेज गति से ख्याति अर्जित कर रहा था। बेचारे शास्त्रीजी को बहुत बुरी तरह निराश और शर्मिन्दा होना पड़ा। इस घटना के बाद से पूज्य आचार्य श्री विश्वबन्धुजी अपने ब्रह्मचारी बालक 'चन्द्र' से बहुत गहरा अन्तरंग स्नेह करने लगे थे। पूज्य गुरूदेव जी इस बात को भलीभाँति समझ रहे थे।

अपनी ही विशिष्ट योग्यता केवल अहमकृति के कारण अपने ही लिए तिरस्कार का कारण बन जाती है। किसी भी प्रकार की योग्यता, केवल शिष्ट और सदाचारी व्यक्ति पर ही शोभा पाती है। सभी प्रकार की योग्यताओं में विद्या की योग्यता का तो कहना क्या ? विद्या के धनी लोगों की विद्या पूज्य श्री आचार्य जी की तरह महान परोपकार करने के लिए ही होनी चाहिए।

क्षुद्र वासनाओं के वशीभूत कुछ लोग अपनी किसी विशिष्ट उपलब्धि से सम्बन्धित योग्यता को अपनी प्रतिष्ठा-सम्मान का साधन मान बैठते हैं। किसी भी प्रकार विशिष्ट योग्यता की आड़ में प्रशंसा-श्रवण की महत्वाकांक्षा, उक्त योग्यता में परिपक्वता एवं स्थायित्व नहीं आने देती है। साथ-साथ तर्क-वितर्क, द्वेष-ईर्ष्या, अपमान-तिरस्कार का वातावरण तैयार करके, कल्याणकारी प्रेम के स्थान पर वैमनस्यता और झगड़े-प्रतिशोध को आमन्त्रण करती है।

किसी विषय विशेष के ज्ञान की उपलब्धि को परखने के लिए प्रतियोगिता की परम्परा का आयोजन वास्तव में ज्ञान-सम्वर्द्धन के लिये किया जाता है। अहमकृति वश किसी को नीचा दिखाने अथवा सम्मान पाने के लिए कदापि नहीं। परम पूज्य गुरुदेवजी की इस लघु-लीला ने शास्त्रीजी को अपनी भूल का एहसास करा दिया था।

पूज्य गुरुदेव जी विद्यालय की मान्यताओं को पूरे मनोयोग से निभा रहे थे। अचानक उन्होंने महसूस किया कि कोई अद्भुत शक्ति अपने प्रबलवेग से उनके चित्त को धीरे-धीरे भगवान कृष्ण की ओर खींच रही है। गुरूदेव को बचपन से ही भगवान कृष्ण की कृपाओं का अनुभव होता रहता था। वे मन ही मन इन कृपाओं का आनन्द लेते रहते थे और कृष्ण दर्शन के लिए अपने चाचाजी से अपनी इच्छा भी प्रकट करते थे। किन्तु इस बार पहले जैसी स्थिति नहीं थी बात अब बहुत आगे बढ़ गई थी। संस्कारों का प्रबल वेग शुरू हो गया था। यह अद्भुत शक्ति क्या थी ? यह पूज्य गुरुदेवजी की पूर्व जन्मकृत कठोर साधना की प्रबल पुरुषार्थ शक्ति थी। पूर्वजन्म के संस्कार अपना अपूर्व फल लेकर धीरे-धीरे बढ़ते चले आ रहे थे। जो साधना पूर्व जन्म में जहाँ से टूटी थी अब वर्तमान जन्म में वह साधना वहीं से शुरू होकर आगे बढ़ने के लिए उद्यत हो रही थी। पूर्वजन्म की साधना स्वयं, गुरूदेव जी को परम लक्ष्य तक ले जाने के लिए तत्पर खड़ी थी। पूर्वकृत पुरुषार्थ की प्रबल सत्प्रेरणाएं उनके चित्त को बराबर मिल रही थी। जो अब उनकी पिछली साधना से भी बढ़कर साधना करने के लिए प्रयत्नशील बना रही थी।

क्रमशः

'योग भोग में राखिय गोई'

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा (दिल्ली)

योग साधना करने के लिये यदि इधर से उधर स्थान या उचित समय की तलाश में भटकते रहे तो न कोई उचित स्थान और उचित समय मिल सकेगा और न साधना हो सकेगी। जो व्यक्ति जहाँ जिस स्थान पर है, जिस परिस्थिति में है, वही समय और स्थान योगसाधना के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है। योगयोगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा और शिष्य अर्जुन को योगसाधना का उपदेश कुरुक्षेत्र के मैदान में उस समय दिया जब चारों ओर शस्त्र प्रहार करने एक दूसरे के खून के प्यासे वीर योद्धाओं की विशाल वाहिनी युद्ध के लिये सन्नद्ध खड़ी थी। कुरुक्षेत्र का प्रतीकार्थ है जीवनसंग्राम कर्मक्षेत्र, जीवन की विषय परिस्थितियाँ, जिनमें पड़कर सुख-सुविधाओं का कोई सवाल ही नहीं उठता अपने कर्तव्य का पूरी सन्नद्धता और संलग्नता से पालन करना ही वहाँ अभीष्ट है। ऐसी विकट परिस्थिति में ही मन और प्राणों को दिव्य आनन्द, दिव्य चेतना और बुद्धि योग का एक धक्का देकर अपने निज स्वरूप में स्थित होकर कर्म करते हुए जीवन्मुक्ति का आनन्द लेना है। यह कहीं भी और किसी भी समय सम्भव हो सकता है। गृहस्थ में रहकर भी क्या यह सम्भव नहीं है ? गृहस्थ योग साधना के लिये सर्वोत्तम स्थल है। गृहस्थ योग साधना के लिये सर्वश्रेष्ठ कवच है। गृहस्थ में रहकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए यदि कोई पूर्णनिष्ठा से योग साधना में प्रवृत्त होता है तो उसको अपेक्षाकृत शीघ्र सफलता मिल सकती है। गृहस्थ की भगवद् भक्ति गहरे में छिपी रहती है। छिपी होने के कारण वह धीरे-धीरे निर्विघ्नरूप से बढ़ती जाती है। वह निरभिमान रहकर साधना करता है। इसमें ढोंग, दिखावा और आडम्बर कम होता है। जितने भी उच्चकोटि के सन्त, योगी और मुनि हुए हैं, उनमें से अधिकांश गृहस्थ थे। कबीर, नानक, रैदास, तुलसी या महर्षि वशिष्ठ, भारद्वाज, अत्रि, अंगिरस, शौनक, गौतम, कणाद आदि सभी तो गृहस्थ थे। पवित्र गृहस्थों के यहाँ तो योगभ्रष्ट पुण्यात्माएँ जन्म ग्रहण करने के लिये लालायित रहती हैं। योग योगेश्वर त्रिभुवन पावन भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि जो योगी किसी अन्तराय के आ जाने से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते, उनका पुनर्जन्म होता है। लेकिन इस जन्म का अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता। इस जन्म के योग ध्यान के पुण्यों के फलस्वरूप ऐसे योगी का जन्म पवित्र पुण्यात्माओं के यहाँ हुआ करता है। अथवा उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करने पर किसी गृहस्थ योगी के यहाँ पवित्र ध र्मात्मा योगनिष्ठ माँ की कोख से उस जीव का जन्म होता है। जहाँ योगमय वातावरण पहले से तैयार होता है। उसे पाकर योगभ्रष्ट आत्मा जन्म लेते ही पूर्वजन्म की योग भूमिका से आगे की श्रेणी की ओर सहज ही अग्रसर हो जाती है।

'शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।'
'अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्'।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।। (गीता)

अर्थात् योगियों के यहाँ जन्म होना उत्कृष्ट साधना का फल है। अतः सामान्य योग साधकों के लिए ऐसी परिस्थिति और ऐसे संयोग का होना कठिन ही नहीं कठिन से भी अधिक कठिन है। इसीलिए दुर्लभ न कहकर **'दुर्लभतर'** शब्द का प्रयोग किया गया है। **'तरप्'** प्रत्यय अपेक्षाकृत अधिक का वाचक होता है। जब परात्पर परब्रह्म करुणावश अवतार ग्रहण करते हैं, तो किसी नन्द-यशोदा या वसुदेव-देवकी तथा दशरथ-कौशल्या जैसों के पावन गृहस्थाश्रम को ही माध्यम बनाते हैं। गृहस्थ ही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का आधार है। सभी की धुरी है। गृहस्थ आश्रम से ही सबका अस्तित्व है। गृहस्थ न हो तो अन्य सारे आश्रमों के लोग अस्तित्वहीन हो जायें गे। इसीलिए सभी ने गृहस्थाश्रम को **'धन्यो गृहस्थाश्रमः'** कहकर भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी जिसका चित्त प्रभु के रंग में रंग जाय और गृहासक्ति छूट जाय तो उससे बढ़कर अन्य कोई साधक क्या होगा ? गृहासक्ति पतन का कारण है, गृहस्थ होना पतन का कारण नहीं। जिन्हें गृहस्थाश्रम में ही भगवत्प्राप्ति होती है और जो निजबोध की सम्पत्ति पा जाते हैं, उनसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा। ऐसे ही पुण्यभाजन विदेहराज जनक हैं। जो न केवल सद्गृहस्थ हैं अपितु मिथिला के नरेश भी हैं वे इतने सिद्धयोगी, जीवन्मुक्त ज्ञानी हैं कि अपनी पूर्णता का प्रमाणपत्र लेने के लिए अष्टावक्र, शुकदेव आदि जैसे ब्रह्मज्ञानी भी उनके सत्संग में आने को अपना सौभाग्य समझते हैं। गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानस के बाल काण्ड में उनकी वन्दना करते हुए उनकी योग सिद्धि का रहस्य भी प्रकट कर देते हैं-

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रकटेउ सोई।।

विदेहराज जनक का जीवन बाहर से ऐसा लगता है कि ये भोग परायण हैं- किन्तु हैं योगयुक्त। जैसे बादाम के कोमल बीज की रक्षा उसके ऊपर का कठोर छिलका करता है, वैसे ही गृहस्थ की जीवनचर्या आन्तरिक रागात्मिका पराभक्ति को गुप्तरूप से पल्लवित करती जाती है। एक दिन सद्गुरु की कृपा का सत्संग पाकर वह परिवार के दायित्वों के तटों को तोड़कर प्रकट हो जाती है और सर्वत्र आप्लावित होकर प्रभु प्रेम के रस से जड़-चेतन को सराबोर कर देती है। ज्ञानियों की सभा में उसका आदर फिर क्यों न हो ?

'राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू।।
सोह न रामप्रेम बिन ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलयानू।।

योग को भोग में छिपाकर रखने की कला हर गृहस्थ नहीं जान पाता। विदेहराज जनक की तत्वदृष्टि है। जीवों के आचार्य लक्ष्मण से लेकर भक्त प्रवर निषाद तक भरत के प्रेम में कहीं न कहीं राजनीति की चाल की शंका कर देते हैं। जिस समय प्रेममूर्ति भरत श्री राम को वनगमन से लौटाने चित्रकूट जाते हैं तो सैन्य समेत उन्हें आता हुआ देखकर श्री राम के पक्षधर उनके सम्बन्ध में

अनिष्ट की तर्कणा करते हैं। सभी, उन्हें समझने में कहीं न कहीं भूल कर देते हैं। उदासी, तपस्वी, साधक, भक्तगण न जाने कितने अपनी बुद्धि के दायरे में ही उनको समझने का प्रयास कर रहे हैं। भगवान श्रीराम यद्यपि वास्तविकता समझ रहे हैं किन्तु न जाने क्यों उसे प्रकट नहीं कर पा रहे या करना नहीं चाहते–

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी।

विदेहराज राजनीति को जानकर भी भरत को राजनीति के चश्मे से नहीं देखते बल्कि दो टूक निर्णय देते हैं–

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरतहुँ सपनेहुँ मनहुँ निहारे।।
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।

गृहस्थाश्रम वह धन्य होता है, जहाँ सत्संग की सुरसरि बहा करती है। जहाँ अतिथि सेवा के बिना जीवन के सुख दुःखदायी लगते हैं। जहाँ परिवार में शील, आचार, धर्मपालन, सदाचार और मर्यादा के सुन्दर पुष्प खिलते रहते हैं। जहाँ "**तुम ते अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी।**" की लक्ष्मण रेखा खिंची रहती है। सद्गुरु भक्ति में बढ़चढ़कर आगे बढ़ने की जहाँ परस्पर स्पर्द्धा होती है। वही गृहस्थ वास्तव में आश्रम है, मन्दिर है, स्वर्ग से बढ़कर है। जिस घर में परस्पर आदर, प्रेम और त्यागभाव की चाँदनी खिली रहती है, वहाँ पराशक्ति नित्य निवास किया करती है। जो रात-दिन आलस्य, भोग विलास, कलह और अहंकार पोषण करने वाले आडम्बरी धर्म कर्म में पड़े रहते हैं, वहाँ योगशक्ति का विकास नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं–

प्रानप्रान के जीव के जीव सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सोहात गृह जिन्हहिं तिन्हहि बिधि बाम।।
सो सुखु करमु धमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।
जोग कुजोग ग्यानु अग्यानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू।।

जब तक घर में पिता-पुत्र, माता-पिता, सास-बहू या भाई-भाई में प्रेम नहीं है तब तक ब्रह्मज्ञान एक धोखा है। योग की कीमत दो कौड़ी की है। गुरुभक्ति की पहिचान सच्चे प्रेम से होती है। उसके बिना योग कुयोग होता है और ज्ञान, अज्ञान बन जाता है। जहाँ प्रेम होगा वहाँ त्याग और समर्पण अपने आप होगा ही। जहाँ त्याग और समर्पण दिखायी न पड़े वहाँ समझ लेना चाहिये कि आडम्बर है, धोखा है। चाहे वह धर्म के नाम पर अथवा योग के नाम पर हो या भक्ति के नाम पर। इससे कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

जब समर्थ सद्गुरु के तीव्र शक्तिपात से अन्तर्दृष्टि का विकास हो जाय तो चाहे घर में रहें या जंगल में कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक ऐसा संयोग नहीं हुआ तब तक '**वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्**' की नीति परक उक्ति के अनुसार वासनिक मन वालों को वन में रहकर भी भोग बुद्धि

ही आती है। जिसे घर में रहते हुए अन्दर का प्रेमरस (रामरस) प्रभुभक्ति का नशा मिल चुका है, वह जहाँ भी रहे वहीं उसकी आँखें मदहोशी का आनन्द लेंगी। मन की गति और मति की अनुभूति पर जीवन का विकास या विनाश निर्भर करता है। दो मित्र देवदर्शन के लिए आये। रास्ते में एक मित्र रात होने के कारण आगे चलने में असमर्थ हो गया। वह ऐसी-वैसी जगह पर रात्रि विश्राम करने के लिए रुक गया। दूसरा व्यक्ति सुख दुःख की परवाह किये बिना चलता ही रहा और अपने लक्ष्य पर पहुँचकर देवदर्शन करने लगा। देवदर्शन करते हुए वह सोचने लगा 'मेरा मित्र रातभर मजे ले रहा होगा। मैं तमाम कष्ट उठाकर यहाँ आ गया हूँ। यहाँ क्या रखा है ? मेरे मित्र को वास्तविक आनन्द मिला होगा। उधर जो विवशता वश गलत जगह रुक गया था, वह सोचने लगा 'अह मैं कितना पापी हूँ, आगे चल नहीं सका।' मेरा मित्र दैव कृपा पाकर कृतकृत्य हो रहा होगा ! विपरीत परिस्थिति में रहकर भी यह व्यक्ति दिव्यानन्द का अनुभव कर रहा है और देवदर्शन के स्थान पर पहुँचा हुआ उसका मित्र वेश्यालय का मन में चिन्तन कर रहा है। इसलिये जो कुछ पाना है, वह मन की गति को सम्भाल के कहीं भी पाया जा सकता है। क्या गृहस्थ और क्या संन्यास ? आवश्यकता है सद्गुरु की कृपा और साधक की तीव्र लगन की। यदि सद्गुरु देव की कृपाशक्ति अर्थात् शक्तिपात पाकर मन की उन्मनि समाधि अवस्था हो जाय तो कहीं भी रहें कोई खतरा नहीं। सन्त ने ठीक ही कहा है "लोहा जब एक बार पारस को छूकर सोना हो जाता है, तब चाहे उसे मिट्टी के भीतर रखो या कूड़े में फेंक दो। वह जहाँ रहेगा, सोना ही रहेगा, लोहा न होगा। इसी प्रकार जो ईश्वर को पा चुका है, वह बस्ती में रहे चाहे जंगल में, उसको फिर दाग नहीं लग सकता।" इस कथन का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि कोई दाढ़ी, माला, छाया, तिलक या गेरुए कपड़े पहनने लगे और एकान्त छोड़कर दूसरे लोगों के घरों में रहने लगे तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। ऐसे का तो सर्वनाश अवश्यम्भावी है। क्योंकि उसका लक्ष्य भजन की आड़ में कोई शिकार करना है। कलिकाल में पाखण्ड की चाँदी है। कुछ लोग दूसरे के घरों में डेरा डालकर योग समाधि का ढोंग रचते हैं। ऐसों के लिए तो अत्यन्त निर्जन, एकान्त स्थान ही उपयुक्त है जहाँ संगदोष से बचे रहकर थोड़ी बहुत साधना हो भी सकती है। दूसरों के घरों में रहकर तो वे कीमत वसूलने में लग जायेंगे। अपने घर पर रहने पर उनको कोई दोष नहीं होगा। क्योंकि वे कर्तव्यों और मर्यादाओं से बँधे रहेंगे।

यदि सद्गुरू की कृपा नहीं हुई तो कोई चिन्ता की बात नहीं। सद्गुरू की प्राप्ति, उनकी पहचान और उनकी कृपा-इन पर हमारा कोई अधिकार नहीं। जब साधना करने की तीव्र उत्कण्ठा जग जाय, समझ लें सद्गुरु की प्राप्ति हो जायेगी। यदि पूर्व जन्म के क्लिष्ट संस्कारों के कारण उसमें विलम्ब हो तो व्याकुल प्राणों की करुण पुकार को गुरु बना लेने से भी काम चल सकता है। व्याकुल प्राण से जो ईश्वर को पुकारते हैं उन्हें बाहरी गुरु की आवश्यकता नहीं उनके अन्दर के हृदय मन्दिर में रहने वाले परम गुरु प्रकट होकर उनकी सहायता कर देंगे। यह सच है कि कोई वास्तविक गुरू होगा तो

तुम्हें इस काबिल नहीं रहने देगा कि तुम फिर संसार की गंदगी में भटकते रहो। जीवन में कुछ उत्क्रान्ति, प्रकाश, उत्साह, प्रसन्नता, आनन्द, उल्लास आये बिना नहीं रहेगा।

जब कीट पतंग, पशु-पक्षी एक बार अपना अभीष्ट पाकर प्राण देकर भी उसे छोड़ना नहीं चाहते, फिर अक्ल के पुतले होकर सद्गुरू प्रदत्त उस दिव्यानन्द को जो छोड़कर विषयानन्द की चाह करता है, उसे क्या कहा जाय ? पतंगा एक बार रोशनी देखकर अंधकार में नहीं जाता, चींटियाँ गुड़ को ढूढ़कर फिर उसे छोड़ती नहीं। यदि हृदय में एक बार दिव्यानन्द की झलक मिल जाय तो प्राण देकर भी उसे न छोड़ें, उसी का गृहस्थ धन्य हो जाता है। सद्गुरू कृपा प्राप्त होने पर सर्वप्रथम व्याकुलता, प्रेम, भक्ति और विश्वास हृदय में भरते जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी अनुभव होने लगता है कि हृदय व्याकुलता से फट जायेगा। इच्छा होती है कि जीभरकर रो लें, मुक्त रूप से अहसास कर लें। ऐसे लक्षण प्रकट होने लगें तो पैर पीछे न हटायें। जो कुछ होता है होने दें, रोकें नहीं। यह तो कली है। इसका फूल बनेगा तब कहीं फल लगेगा। धैर्य रखकर कली को फूल बनने दें। बीच में ही तोड़ न डालें। इसी से अमृत फल बनेगा। धैर्य रखें। सत्संग की चाह होने पर, उस चाह को अवश्य पूरा करें। कामनाओं और वासनाओं की लू की चपेट से अपनी कली की रक्षा सत्संग के शीतल वातावरण में होती है।

यदि साधना को सफल बनाना है तो घर को कारागृह न बना डालें। विषयासक्त जीवों के घर जेलखाने हैं। जहाँ हर जीव कुछ साल की सजा पाने के लिये आया है। कुछ लोग तो उम्र कैद की सजा पाये हुए हैं। **'गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम शैल विशाला।'** किसी-किसी घर में देवियाँ भयंकर होती हैं तो किसी में पुरुष। एक दूसरे से मन नहीं मिलता। विचित्र बात है। फिर भी साथ-साथ एक ही जगह रहकर रो-रोकर सजा काट रहे हैं। किसी को किसी दफा में सजा हुई है किसी को किसी में। घर-परिवार के ममता के सम्बन्ध हथकड़ी और बेड़ी का काम करते हैं। बिना साधनामय जीवन बनाये इस सजा में छूट नहीं मिल सकती। यह हमारे पुरुषार्थ पर है कि इसे हम कृष्ण की जन्मस्थली (कृष्णमन्दिर) बनायें या वधस्थली। कारागृह में वे भी रहते हैं जो उसी की नौकरी करते हैं। किन्तु वे सजा न भोगकर कर्तव्य निर्वाह करते हैं। वे सरकार के नौकर कहे जाते हैं। ऐसे ही उस परमसत्ता की नौकरी (योगध्यान) करने पर यह कारागार जीवन यापन का अच्छा साधन बन जायेगा। भगवान से भक्त प्रार्थना करता है- **'जब-जब मैं इस संसार का बन्दी बनूँ। निष्काम भाव से कर्म करूँ।'** निर्लिप्त भाव से कर्म करना ही कर्मयोग की साधना है। गृहस्थ में रहकर कर्मयोग की साधना करने वाला स्वतंत्र रहकर भोग के बीच में योग को छिपाकर उसका विकास कर सकता है।

जो माँ-बाप अपने बच्चों को केवल जमीन-जायदाद इकट्ठी कर रखने को ही उनके प्रति अपना सच्चा प्रेम या कर्तव्य समझते हैं, वे धोखा खाते हैं। जो बच्चों में भागवद् भक्ति और योग के संस्कार डालने का अधिक प्रयत्न करते हैं वे उनके लिये स्थायी अक्षय कोष छोड़कर जायेंगे।

जिसका लाभ उन्हें तो मिलेगा ही, पूरे समाज को भी मिलेगा और पिता-माता के कुल को भी मिलेगा। एक सन्त कहा करते थे कि गृहस्थ जीवन में सामान्यतया उस एकमेव परमतत्व की प्राप्ति बहुत कठिन है। तराजू के एक पलड़े में हिमालय पहाड़ रख लिया जाय और दूसरे पलड़े में गृहस्थ जीवन के भार और दुःख, तो गृहस्थ का पलड़ा भारी पड़ेगा। गृहस्थ के दायित्वों से मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता। **'गृह कारज नाना जंजाला'**। गृहस्थी के भार से हरदम व्यक्ति दबा रहता है। लेकिन श्री सद्गुरू की शरण तथा सत्संग से गृहस्थ का जीवन अत्यन्त मधुर और आनन्दमय बनने लगता है। सद्गुरूदेव का सतत स्मरण और उनकी लीलाओं का संकीर्तन ही गृहस्थ का जाप बन जाता है। जो कुछ निर्माण कार्य शिल्पविधान करता है, वही मुद्रा बन जाती है। उसका गमन ही प्रदक्षिणा तथा भोजन करना ही यज्ञाहुति, लेटना ही प्रणाम करना, उसका हास विलास ही प्रभु की पूजा बन जाती है। श्री सद्गुरू दीन दयालु की कृपा से और सत्संग की महिमा से दुर्वहनीय गृहस्थी के भार फूल से सुकुमार और आनन्द की सुगन्धि से भर जाते हैं। सत्संग में प्राप्त होने वाला सुख देव दुर्लभ आनन्द है जिसे कोई गुरुभक्ति का रंग लगने वाला ही प्राप्त कर पाता है। भगवान आदि शंकराचार्य सत्संग की महिमा बताते हैं-

सत्संगत्व निस्संगत्वं, निस्संगत्वे निर्मोहत्वम्। निर्मोहत्वे निश्चल चित्तम्। निश्चल चित्ते जीवन्मुक्ति। अर्थात् सत्संग से निःसंगता, निर्मोहता, निश्चलचित्तता और फिर जीवन्मुक्ति का लाभ मिलता है। अतः इसे साधना का माध्यम बनायें।

मनुष्य अपने बलबूते पर आध्यात्मिक जीवन में सफलता प्राप्त करले, यह असम्भव है। गृहस्थ के दुःख, चिन्तायें, व्यस्तायें, कर्म की बेड़ियाँ कब उसे कुछ करने देती हैं लेकिन श्री गुरुदेव की कृपा हो जाय तो-

'जेहि कारण सिद्धा पचे, सो हम गुरूकृपा से पाइया।
अलख मूरत मुनिय सूरत ता में जाय समाइया।।

***

अविरत काम करो किन्तु सांसारिक वस्तुओं से नाता न जोड़ो। वासना भयानक है। यह संसार हमारा घर नहीं जिन अनेक मंजिलों में से होकर हमें जाना है, उन्हीं में से यह एक है। सांख्य के उस महावाक्य का स्मरण रखो-समस्त प्रकृति आत्मा के लिये है, आत्मा प्रकृति के लिये नहीं।

योग प्रचार कार्यक्रम कानपुर : एक रिपोर्ट

केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरणों में समर्पित एवं सर्व समर्थ पूर्ण योगेश्वर सद्गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के अवतार दिवस की पावन स्मृति में मनाया जाने वाला, श्री सिद्धगुफा योग प्रचार मण्डल कानपुर का वार्षिक महोत्सव (योग शिविर) इस वर्ष दिनांक उन्नीस अक्टूबर से बाइस अक्टूबर तक कानपुर शहर के कोलाहल युक्त वातावरण से दूर स्थित आई०आई०टी० कानपुर के कम्यूनिटी हाल में महान आनन्द एवं उत्साह के परम पवित्र एवं योगमय वातावरण में मनाया गया। वैसे तो निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार इस आयोजन का प्रारम्भ दिनांक उन्नीस अक्टूबर की प्रातःकाल से होना था परन्तु गुरु भाई बहनों के पचासों की संख्या में दिनांक अट्ठारह अक्टूबर को अपराह्न पहुँचने के कारण, कार्यक्रम अट्ठारह अक्टूबर की सायंकाल को विधिवत आरती के साथ महान उल्लास से आरम्भ हो गया। योग विद्या के गूढ़ रहस्यों को बखूबी समझने एवं समझाने की योग्यता रखने वाले परम आदरणीय गुरूभाई आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा, श्री पूर्ण चन्द्रजी पन्त एवं भुवनेन्द्र जी झा के अट्ठारह तारीख में पधारने के कारण उस दिन सायंकाल भी उपस्थित गुरु भाई बहनों को योग विद्या के रहस्यों को समझाने वाले प्रवचन श्रवण करने का सुअवसर अनायास ही सुलभ हो गया।

विगत वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष का योग महोत्सव शिविर कुछ विशेषताओं के कारण अलौकिक था। इस वर्ष के कार्यक्रम में साधकों को प्रवचन के साथ ही प्रयोग (प्रेक्टीकल) भी कराया गया। श्वास-प्रश्वास द्वारा मंत्र-जप की विधि एवं ध्यान करने की विधि का अभ्यास कराया गया।

उन्नीस अक्टूबर से बाइस अक्टूबर तक के इस योग महोत्सव शिविर का कार्यक्रम कुछ इस प्रकार रहा कि प्रातः काल पाँच बजे आनन्दकन्द योगेश्वरों की मंगला आरती आश्रम से आये ब्रह्मचारी श्री शुक्ला जी (नम्बर दो) द्वारा की जाती थी जिसमें कम्यूनिटी हाल में उपस्थित हमारे सभी गुरूभाई बहन उपस्थित रहते थे। आरती के पश्चात श्री मद्भगवद्गीता के दो या तीन अध्यायों का पाठ आश्रम के आदरणीय गुरूभाइयों द्वारा कराया जाता था जिसका अनुसरण सभी उपस्थित गुरु भाई बहनों द्वारा किया जाता था। इसके बाद करीब आधे घण्टे तक सभी उपस्थित भाई बहनों को मंत्र जप या ध्यानाभ्यास करना होता था। करीब साढ़े छः बजे आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा, श्री पूर्णचन्द्र जी पन्त, श्री भुवनेन्द्र जी झा पण्डाल में बने आसन पर विराजमान हो जाते थे। परम आदरणीय ब्रह्मचारी एवं श्री गुरूदेव भगवान के विशेष कृपा पात्र शिष्य श्री रघुराज जी द्वारा सभी जिज्ञासु भाईयों को विधि विधान से जीवन तत्व साधन करके दिखलाया और कराया जाता था एवं इस साधन की सभी क्रियाओं के करने का नियम एवं उससे होने वाले शारीरिक एवं आध्यात्मिक लाभ का वर्णन आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा द्वारा सरल एवं सुबोध भाषा में समझाया जाता था। इसके बाद किस रोग में कौन-सा आसन लाभकारी है इसको श्री आचार्य जी द्वारा बतलाया जाता था एवं उसे करके श्री रघुराज जी एवं श्री शुक्ला जी द्वारा दिखलाया जाता था। इसके पश्चात् जिज्ञासुओं एवं रोगियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर श्री आचार्य जी द्वारा दिया जाता था।

प्रात: काल की सामूहिक आरती का समय साढ़े आठ बजे का था। इस समय तक पूरा पण्डाल गुरू भाई बहनों एवं जिज्ञासुओं से भर जाया करता था। सामूहिक आरती लखनऊ से पधारे एवं आराध्यदेव जी के श्री चरणों में बचपन से ही योगमय जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल द्वारा की जाती थी। इसके बाद अल्पाहार का समय निर्धारित था। अल्पाहार के बाद झाँसी मण्डल से पधारे सर्व समर्थ गुरूदेव भगवान के कृपापात्र शिष्य श्री कृष्ण कान्त जी अपने बाल गोपालों की भजन मण्डली के साथ मंचासीन होकर प्रभु प्रेम से ओतप्रोत भजनों द्वारा वातावरण को योगमय बना देते थे। आध्यात्मिक प्रवचन का कार्यक्रम आदरणीय ब्रह्मचारी श्री ओम प्रकाश जी पालीवाल की अध्यक्षता में आरम्भ होता था, जिसमें वक्ताओं में परम आदरणीय श्री पूर्णचन्द्र जी पन्त, श्री चन्द्रहास जी शर्मा, श्री जनार्दन पाण्डेय जी एवं काल्पी से पधारे प्रधानाचार्य श्री दुबे जी प्रमुख थे।

ध्यान योग की विशेष योग्यता रखने वाले श्री जनार्दन पाण्डेय जी ने उपस्थित समुदाय को यह अच्छी प्रकार समझा दिया कि योगी साधक के लिये गुरूदेव की अर्चना पूजा उनका स्मरण एवं चिन्तन ध्यान मुख्य है। शास्त्र सम्मत श्लोकों द्वारा आप ने यह प्रमाणित किया कि सभी शक्तियों से सम्पन्न होने पर भी यदि गुरुदेव की भक्ति नहीं है तो सब कुछ व्यर्थ है यथा :-

'बुद्धिबड़ी, चतुरायी बड़ी एवं सुन्दरता तन में छिटकी हो।
नाँम बड़ो, धन धाम बड़ो, एवं सुन्दरता तन में छिटकी हो।
झूमत द्वार ही गज य मयंक व इन्द्रहि से कुछ नाहिं कमी हो।
श्री गुरूदेव कृपा बिनु तो, जैसे सुन्दर नारि की नाक कटी हो।।'

कोई भी धार्मिक ग्रन्थ बिना योग के पूर्णत्व को प्राप्त नहीं हो सकता के अनुभव युक्त ज्ञाता श्री पूर्णचन्द्र जी पन्त शास्त्री जी ने उपस्थित समुदाय को यह अच्छी प्रकार समझा दिया कि कोई भी साधना, प्राणी मात्र को मोक्ष नहीं प्रदान कर सकता, केवल योग मार्ग ही ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा प्राणी मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसके साथ ही उन्होंने यह तथ्य भी समझा दिया कि किसी योगी गुरूदेव के संरक्षण में रहकर ही योग साधना करनी चाहिए अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है, क्योंकि सिद्धान्त है कि-

देखा देखी साधे योग, छीजे काया बाढ़े रोग

परम आदरणीय श्री चन्द्रहास शर्मा जी ने उपस्थित जिज्ञासु समुदाय को समझाया कि मुख्यतया योग के दो भेद हैं। पहला **साधन योग** एवं दूसरा **सिद्ध योग**। साधन योग वह योग है जिसमें साधन शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार योगी गुरू के संरक्षण में रहकर साधना पथ पर बढ़ता है। इस पथ में साधक का पुरुषार्थ ही प्रगति का मुख्य कारण बना रहता है। एक तो साधक का सदैव पुरूषार्थी बने रहना सम्भव नहीं है और यदि दैव कृपा से साधक पुरूषार्थी बना रहा तो भी इस पथ में बहुत समय (कई जन्म) लग जाते हैं।

उन्होंने कहा कि योग का दूसरा पथ सिद्ध पथ है, इस पथ में साधक का पुरुषार्थ कम परन्तु उसकी श्रद्धा एवं सिद्ध गुरूदेव की अहैतुकी कृपा ही साधक की प्रगति का मुख्य कारण बनती है। साधक अपने गुरूदेव का यदि लाड़ला शिष्य है तो उसे अनायास ही योग की उच्चतम स्थिति प्राप्त

योग प्रचार कार्यक्रम, कानपुर (19 से 22 अक्टूबर 2000)

भव्य मंच पर आसीन श्रीप्रभुजी व श्रीगुरुजी के स्वरूप

'जीवन तत्व साधन' करते गुरु भाई

कार्यक्रम में ब्र० रघुराजसिंह द्वारा कूर्मासन का प्रदर्शन

कार्यक्रम में सम्मिलित गुरु भाई-बहिनों का विशाल समुदाय

हो जाती है। इस तारतम्य में यह बताना समीचीन होगा कि इस धराधाम पर दो सौ अस्सी साल तक विराजमान रहने वाले योगिराज तैलंग स्वामी ने हमारे दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के कृपापात्र शिष्य सिद्ध योगीराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को जो पूर्ण रूप से गृहस्थ थे (दो बालक एवं तीन बालिकायें थीं) को निमित्त बनाकर अपने मुखारबिन्दु से यह कहा था कि योग की जिस स्थिति को प्राप्त करने के लिए मुझे अपनी लंगोटी तक छोड़नी पड़ी, वह स्थिति इस महापुरुष को अपने गुरूदेव पूर्ण योगेश्वर की अहैतुकी कृपा से सहज ही प्राप्त है।

यौगिक प्रवचन का कार्यक्रम दो बजे तक चलता था। इसके बाद भोजन एवं विश्राम का समय था। सायंकाल के भजन कीर्तन का संचालन अपराह्न तीन बजे से झाँसी से ही पधारीं आदरणीया गुरू बहन आशा रानी द्वारा अपनी मंडली के साथ किया गया एवं आदरणीय ब्रह्मचारी श्री रघुराज जी ने यौगिक चमत्कारों से परिपूर्ण प्रभु कृपा चरित्रों एवं योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं से परिपूर्ण कथाओं द्वारा कार्यक्रम को सरस, ज्ञानदायक एवं प्रेममय बना दिया। इसके बाद सायंकाल ६ बजे से सात बजे तक अवकाश रहता था, सात बजे से आठ बजे तक विभिन्न मंडलों द्वारा भजन कीर्तन होता था, आठ बजे आरती एवं रात्रि दस बजे तक यौगिक प्रवचन का कार्यक्रम चलता था। इसके बाद भोजन एवं रात्रि विश्राम तथा प्रातः पाँच बजे से पुनः वही कार्यक्रम आरम्भ हो जाता था। उन्नीस अक्टूबर से बाइस अक्टूबर तक यह कार्यक्रम इसी प्रकार चला।

इस योग शिविर में कानपुर शहर एवं देहात के अलावा सवाँई आश्रम, योग साधन आश्रम ऋषिकेश, आराध्यदेव की जन्म स्थली अलूपुर धाम, मध्य प्रदेश, बलिया, वाराणसी, सुल्तानपुर, मिरजापुर, आगरा, लखनऊ, हिमाचल प्रदेश के गुरूभाई बहनों ने भाग लेकर अलौकिक आनन्द का लाभ उठाया। यद्यपि सर्व समर्थ गुरूदेव भगवान की अहैतुकी कृपा के बिना ऐसे विशाल यौगिक कार्यक्रमों का सफल संचालन सम्भव नहीं है तथापि कानपुर शहर एवं देहात का प्रत्येक गुरू भाई बहन साधुवाद के साथ ही प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है कि उन्होंने अपने तन-मन-धन द्वारा अपनी पूरी सामर्थ्य लगाकर इस आयोजन को सफल बनाया।

अन्त में श्री गुरूदेव जी महाराज के अंतरंग शिष्य आदरणीय गुरुभाई श्री भुवनेन्द्र जी झा एवं आदरणीय श्री पूर्ण चन्द जी (योग साधना आश्रम ऋषिकेश) को साधुवाद दिये बिना यह योग शिविर कार्यक्रम अधूरा ही प्रतीत होता है जिनकी उपस्थिति से ऐसा प्रतीत होता था कि गुरूदेव स्थूल रूप से स्वयं अपना योग प्रचार कार्यक्रम कर रहे हैं।

अपने योगेश्वर द्वय से यही प्रार्थना है कि कानपुर मण्डल के आदरणीय भाई-बहनों को इस वार्षिक योग शिविर को आयोजित करने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करते रहने की कृपा प्रदान की जाय। अन्त में-

योगेश्वर दोनों सिर पर हैं,
तसल्ली दिल को होती है।
सबकी नाव पानी में,
मेरी रेती में चलती है।।

***

स्वस्थ और स्वास्थ्य – एक विश्लेषण

–विजय प्रकाश पालीवाल सवाँई, आगरा

कहते हैं, स्वस्थ शरीर में स्वस्थ शान्त आत्मा का निवास होता है। यद्यपि आत्मा स्वभावतः स्वस्थ और शान्त है, फिर भी अहंकार 'राजस-तामस' वृत्तियों से जीव को अस्वस्थ बनाने का प्रयास करता रहता है, जिससे यह अशान्त हो जाता है।

आज विश्व के वैज्ञानिकों और चिकित्सकों ने बीस वर्षों के अनुसंधान के पश्चात् सुस्वास्थ्य के लिये विशुद्ध शाकाहार का व्यवहार आवश्यक बताया है। जो भारत में कई हजार वर्ष–पूर्व 'गीता' में सात्विक आहार के रूप में बतलाया जा चुका है।

इस प्रसंग में 'स्वस्थ' शब्द के अर्थ पर ध्यान देना आवश्यक है–**'स्वस्मिन तिष्ठतीति स्वस्थ'**। अर्थात् जो 'स्व' में स्थित हो उसे स्वस्थ कहते हैं। 'स्व' का अर्थ है जीवात्मा। स्वस्थ शरीर में सात्विक बुद्धि और प्रसन्न मन की आवश्यकता होती है। गीता में कहा गया है–

'सत्वात्सञ्जायते ज्ञानम्। (१४/१७)

आयुर्वेद के अनुसार कफ, वायु तथा पित्त की समरूपता स्वस्थता है। किसी एक के वृद्धि ह्रास होने से चित्त–विक्षेप अशान्ति मानसिक–शारीरिक असंतुलन–उपद्रव होने लगते हैं। इसलिए पूर्ण स्वस्थता हेतु शारीरिक समरूपता के साथ मानसिक समरूपता भी आवश्यक है। ऐसी स्वस्थता से ही शान्ति मिलती है। शान्ति ही सुख है या सुख का कारण है। अशान्त व्यक्ति को सुख कहाँ ?

अशान्तस्य कुतः सुखम्।। (गीता २/६६)

अंग्रेजी में एक प्रसिद्ध सूक्ति है– 'A happy life consists in tranquility' सुखी जीवन मानसिक शान्ति से ही होता है। सुख और दुःख को समान समझने वाला आत्मभाव में स्थित ही पूर्ण स्वस्थ माना जाता है–

'समदुःखसुखः स्वस्थः।' (गीता १४/२४)

यही स्वास्थ्य गुणातीत का प्रथम लक्षण है। जैसे शरीर में बहुत कृश–दुर्बल है तो प्राणी अस्वस्थ माना जाता है। वैसे ही बहुत मोटा है तो भी वह अस्वस्थ कहा जाता है। जैसे सर्व समर्थ ईश्वर जीव की आयु की वृद्धि और क्षय का विधान करते हुए स्वयं अपचय और उपचय दोनों से रहित होने से ही स्वस्थ है, वैसे ही अपचय और उपचय दोनों से रहित शरीर स्वस्थ माना जाता है–

आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः।
उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ।। (श्रीमद्भा० ४/११/२१)

इन प्रसंगों से निष्कर्ष निकलता है कि स्वस्थ होने के लिये शारीरिक और मानसिक संयम दोनों ही समानरूप से अपेक्षित है। असंयत होकर जो अधिक स्वस्थ होने के लिए अधिक भोग करते हैं वे सुख के अधिकारी नहीं होते। सुख शान्ति के लिए चित्त का प्रसन्न रहना अति आवश्यक है। स्वयं को हंसमुख रखना भी स्वास्थ्य का लक्षण है। "Laughing is a good tonic for the health".

स्वस्थ शरीर से हम इस लोक परलोक दोनों को संवार सकते हैं–

"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।"

आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ

(विजय प्रकाश पालीवाल सवांई, आगरा)

आरती श्री गुरूदेव की गाऊँ।
आरती गाऊँ बलि-बलि जाऊँ।।
आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ।।

* * *

ब्रह्मा-विष्णु-शंकर तुम्हीं हो।
सकल तीर्थ धाम तुम्हीं हो।।
चरण-कमलों में शीश नवाऊँ,
आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ।।

* * *

मेरे प्राण नाथ आप हो,
सुख-दुःख मेरे साथ आप हो।
चरण कमल में सब सुख पाऊँ,
आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ।।

* * *

मन में योग की ज्योति जलाई,
हरि नाम की सुधा पिलाई।
निशदिन तुमरो ही यश गाऊँ,
आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ।।

* * *

मोहि चरण शरण रख लीजों,
गुरु भक्ति को वर दीजों।
तुम्हरी कृपा से भव तर जाऊँ,
आरती श्री गुरुदेव की गाऊँ।।

* * *

(पिछले अंक से आगे)

बच्चे का ध्यान

बाल मचलन करने के बाद इस क्रिया को अवश्य करना चाहिए। इस क्रिया में अपने शरीर को बिल्कुल स्थिर भाव से ढीला छोड़ दीजिए और शांत भाव से लेटे रहिए। शरीर में कहीं तनाव न रहे। आँख मूँदकर आप कल्पना कीजिए कि आप किसी उद्यान, पार्क या पहाड़ी रमणीक स्थान पर पहुँच गये है। ऐसे सुन्दर स्थान को आपने कभी देखा होगा। यदि नहीं देखा है तो कल्पना में ऐसे रमणीक स्थान की रचना कीजिए। और ध्यान कीजिए कि उस उद्यान में एक दो या तीन वर्ष का छोटा बालक खेल रहा है। आप भी कल्पना में उस बच्चे के साथ खेलने लगेंगे। पाँच मिनट तक इस प्रकार बच्चे का ध्यान कीजिए। इस ध्यान से कुछ देर मे वह बच्चा स्पष्ट दीखने लगेगा और ध्यानकर्ता अपने को भी एक बच्चा महसूस करने लगेगा। यह क्रिया जीवन तत्व साधन की प्राणभूत है।

इस क्रिया से स्वाभाविक आल्हाद प्राप्त होता है और उसी के फलस्वरूप सभी रोगों की निवृत्ति स्वतः हो जाती है। बाल मचलन व बच्चे का ध्यान दोनों क्रियायें एक दूसरे से सम्बन्धित है। और दोनों को यथार्थ रूप मे करने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

इस क्रिया को करने के लिए आप अपने ही लड़के या पोते का ध्यान कर सकते है। या किसी दूसरे के स्वस्थ हँसते-खेलते हुए बच्चे का भी ध्यान कर सकते हैं। आपने इस प्रकार बच्चे को बहुत बार देखा होगा और उसी को स्मृति पटल पर लाने का अभ्यास कीजिए।

आपने अपने भ्रमण काल मे किसी रमणीक उद्यान या पार्क का दर्शन किया होगा। बम्बई में कमला नेहरू पार्क, मैसूर के उद्यान,

खजुराहो के मैदान अथवा हिमालय के नन्दन वन का आपने दर्शन किया होगा अथवा किसी चित्र या सिनेमा मे ऐसा स्थान देखा होगा। आप उसी रमणीक स्थान में अपने मन को ले जाइये और कल्पना से

खेलते हुए बच्चे का ध्यान कीजिए और उसी के साथ स्वयं खेलने लगिये और खेलते-खेलते इतने मग्न हो जाइये कि आपको अपना स्वरूप भी बालक का ही स्वरूप दिखाई देने लगे। उस समय आपके शरीर में बालक सुलभ चंचलता हर्षोन्वेग एवं आह्लाद भरा हुआ हो। यही बच्चे के ध्यान की सफलता है। बच्चे के इस ध्यान में जिन बच्चों को देखकर आपके मन में वात्सल्यता के भाव जगे बुद्धि आशीर्वादात्मिका बने इस प्रकार के बच्चों के ध्यान की आवश्यकता नहीं। प्रत्युत जिन बच्चों से आपका कोई सम्बन्ध नही है केवल मात्र बाल सुलभ क्रीड़ा एवं उनकी आह्लाद भरी चंचलता को देखना ही आपका परम लक्ष्य है। उनके आह्लाद में अपने आपको आह्लादित कीजिए और अपने को बच्चा समझिये। यही बच्चे के ध्यान की उत्कृष्टता है। इस प्रकार का अभ्यास करते-करते आपको अपना रूप भी बच्चे का ही रूप दिखाई देने लगेगा। ऐसी स्थिति आ जाने पर

समझ लेना चाहिए कि यह बाल मचलन क्रिया और बाल्यावस्था के ध्यान की पूर्ण सफलता है। बाल मचलन और बच्चे का ध्यान, जीवन तत्व साधन में सारभूत क्रिया है। इसकी सफलता में ही जीवन तत्व साधन की सफलता है।

नाड़ी संचालन

जीवन तत्व साधन की आठवीं क्रिया का नाम **नाड़ी संचालन** है। इसको करने के लिए सीधे बैठ जाइये और अपने पैरों को जितना अधिक से अधिक फैलाया जा सके खोलकर फैलाइये। इस तरह फैलाने पर घुटने के नीचे का भाग और पैर की पिण्डली बिल्कुल जमीन से सटी रहनी चाहिए। दोनों के पैरों के बीच का स्थान कम से कम सात बालिश्त का होना चाहिए। इस तरह पैर फैलाने के बाद थोड़ा शरीर को आगे की ओर झुका कर दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें पैर के अंगूठे को छुओ और बायें हाथ को एकदम पीछे ले जाओ। इसी प्रकार से फिर दायें हाथ को घुमाकर पीछे ले जाओ और बायें हाथ की अंगुलियों से दायें पैर के अंगूठे को छुओ। इस तरह बराबर चक्राकार घूमते रहो। कही रुकने की आवश्यकता नही है।

इस क्रिया को पन्द्रह मिनट तक करना चाहिए। इसके करने से गृहणी नाड़ी अपनी यथार्थ स्थिति में रहती है। मन्दाग्नि की निवृत्ति हो जाती है और शरीर की सम्पूर्ण नस नाड़ियाँ सशक्त व सचेत होकर काम करने लगती है। और शरीर में पूर्ण रूपेण रक्त-रस का संचार होने लगता है। हमारे शरीर के अन्दर नस व नाड़ियों का एक जाल बिछा है और उन्ही के द्वारा शरीर के सभी अंगों का संचालन होता है। नाड़ियों के कमजोर होने से अनेक रोग हो जाया करते है। इस बात को समझने के लिए शरीर रचना पर विचार करना आवश्यक है।

किसी कार्य का लाभ पूरा-पूरा तब तक नहीं दिखाई दे सकता जब तक उसको करने वाला उसका कारण और हेतु अच्छी तरह नही जान जाता। किसी भी यन्त्र को (एक घड़ी ही) ले लीजिए। उस पर अच्छी तरह ध्यान दीजिए तो आपको मालूम हो जायेगा कि इसके सभी कल पुर्जे या चक्के अपनी गति के लिए एक दूसरे पर निर्भर है और यदि एक स्थान पर दाँता टूट जाता है या उसका चक्का ढीला पड़ जाता है अथवा यदि वे चक्के जिस धुरी पर घूमते हैं वही खिसक जाती है तो सारे कल पुर्जों के कार्य में गड़बड़ी पैदा हो जाती है और यदि उसका उपचार नहीं किया गया तो अन्त में यन्त्र या घड़ी बन्द ही हो जाती है। यदि मनुष्य के बनाये यन्त्र की यह अवस्था है तो ईश्वर निर्मित इस सर्वश्रेष्ठ कारीगरी वाले यन्त्र में भी यही बात लागू होती है।

हमने इस मानव शरीर की उपमा एक यन्त्र से दी है। निः सन्देह यह एक यन्त्र ही है और तब तक तो यह यन्त्र अवश्य है जब तक इसका नित्य का कार्यकलाप चल रहा है। परन्तु यह भी समझ रखना चाहिए कि यह केवल यन्त्र ही नही है बल्कि यह एक चैतन्य पदार्थ, एक जीवित शक्ति तथा एक कार्यक्षम, बुद्धि सम्पन्न जीव है। जो मनुष्य अपनी शरीर रचना को जानकर कोई साधन करता है। वह अधिक सफलता प्राप्त करता है। जीवन तत्व साधन करने वालों को भी इसकी क्रियाओं को

करते समय यह भावना करनी चाहिए कि अमुक क्रिया से अमुक अंग सुदृढ़ व सचेतन हो रहे है और उनके रोग दूर होकर, अंग-प्रत्यंग स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो रहे है।

जीवन तत्व साधन की आठवी क्रिया नाड़ी संस्थान से सम्बन्ध रखती है। अत: उनके बारे मे हम विशेष जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

नाड़ी संस्थान–मानव शरीर मे यन्त्रों या तन्तुओं के ऐसे समूह है जो साधारणत: कार्य क्रिया करते है, इन्हें संस्थान (System) कहते है। इस तरह जो यन्त्र पाचन क्रिया का कार्य करते है उन्हें पाचन संस्थान (Digestive System) कहते है और इनके अन्तर्गत ही उदर गुहा, यकृत ग्रन्थियाँ, प्लीहा आदि है। अब वे यन्त्र जिसे गति, भाव या चेतना प्रभृति प्राप्त होती है। उन्हें **नाड़ी या स्नायु संस्थान** (Nervous System) कहते है। नाड़ी संस्थान के दो भाग है।

(१) सौषुम्न **यामा** मस्तिष्क-मेरुदण्ड सम्बन्धी नाड़ियाँ

(२) सांवेदनिक नाड़ियाँ (Sympathetic nervous System)।

सांवेदनिक नाड़ियों से पोषण यन्त्र, ग्रन्थियाँ तथा रक्तवाहनियों को स्नायु प्राप्त होते है। ये सौषुम्न नाड़ियों से मिली हुई है तथा इनके दो घर होते है जो कशेरुकाओं के दोनों ओर लगे रहते है। प्रत्येक घड़ मे लम्बे-लम्बे नाड़ी के गुच्छे है जिन्हे नाड़ी के गंड (Ganglia) कहते है। नाड़ी सूत्र के सिरे जो नाड़ी गंड से मिल गये है वही नाड़ी जाल (Plexuses) है। इन्ही को चक्र भी कहते है। इनका वर्णन हम अगले लेख में करेंगे।

सौषुम्न नाड़ी संस्थान ये है–

१ मस्तिष्क (Brain)

(अ) वृहत् मस्तिष्क (Cerebrum)

(ब) लघु मस्तिष्क (Cerebellum)

२ मस्तिष्क सेतु (Poro Verstic)

३ सुषुम्ना

४ नाड़ीघड़, नाड़ी सूत्र, नाड़ी पुच्छ।

वृहत मस्तिष्क–

यह दो भागों मे बँटा है। इन दो भागों के मध्य मे एक दरार (Sagital Fissure) रहती है। इसके द्वारा मस्तिष्क दो भागों मे बँटता है। उन भागों को मस्तिष्क गोलार्ध (Cerebral hemisphere) कहते है। ये दोनों दाहिने और बाये दोनों ओर रहते है। दाहिने गोलार्ध को (Right hemisphere) और बाये गोलार्ध को (left hemisphere) कहते हैं। परन्तु ये दोनों भाग भी नीचे से जुड़े है। जिस अंश से जुड़े है उसे महासंयोजक (Corpus Callosum) कहते है। वृहत् मस्तिष्क का भीतरी पटल धुँमैला या मटमैले रंग के पदार्थ या सेलों से बना है। इसमें कही उभार और कही गहराई रहती है। उभरे हुए स्थान को क्रांक (Convolution) और गहरे स्थान को सीता (Sulens) कहते है। इसका भीतरी भाग सफेद पदार्थ अर्थात् नाड़ी तन्तुओं से बना है। दूसरे अंश

को वल्क (Cortex) कहते है। मस्तिष्क का बाह्य भाग सेलों से और भीतरी नाड़ी तन्तुओं से बना है। प्रत्येक गोलार्ध का नीचे वाला भाग खोखला रहता है और दोनों गोलार्धों के मध्य में एक पतला पदार्थ सा रहता है।

लघु मस्तिष्क–

इसमें दो गोलार्ध होते है और यह वृहत मस्तिष्क के नीचे रहता है। इसमें अनेक सीतायें होती है जो ज्यादा गहरी होती हैं। इसके तीन भाग है। दो गोलार्ध और नीचे का मध्यांश। इन दोनों के बीच में एक डाल की तरह (Corpus dentatum) रहता है इसमें तीन स्तम्भ होते है।

मस्तिष्क हेतु–

यह लघु मस्तिष्क के सामने का एक गोल घूमा हुआ भाग है। यह सफेद है। यहीं से सुषुम्ना, लघु मस्तिष्क और बृहत् मस्तिष्क में जाने वाली नाड़ियाँ सब निकली है। सेतु के नीचे छोटे-छोटे दो गोल दाने है। ये **वृन्त पिण्ड** (Corpus mammilare) कहलाते है। उसके सामने एक **वृहत पिण्ड** (Hiphosis) फिर **दृष्टि योजिका** (Optichiasm) और उसके प्राण पथ (Medula Oblongata) है।

आवश्यक सूचना

सभी गुरु भाई-बहिनों को सूचित किया जाता है कि इक्कीसवीं सदी का प्रथम महा कुम्भ प्रयाग में माघ माह में सम्मिलित होने का शुभ अवसर प्रभु कृपा से प्राप्त हो रहा है।

पूर्व वर्षो की भाँति श्री सिद्धगुफा सवाई, आगरा के तत्वावधान में लगने वाला शिविर मेला क्षेत्र में बाँध के नीचे अपने पूर्व स्थान, रामानुज मार्ग पर 9 जनवरी 2001 (पौष पूर्णिमा) से 8 फरवरी, 2001 (माघ पूर्णिमा) तक चलेगा। कुम्भ महा मेला के विशेष पर्वो का विवरण निम्नवत् है–

14 जनवरी को मकर संक्रान्ति स्नान
24 जनवरी को मौनी अमावस्या स्नान
29 जनवरी को बसन्त पंचमी स्नान।

पत्र व्यवहार का पता :
श्री विनय मालवीय
60 C/1/14, जोंधवल महदौरी कालौनी
तेलियार गंज, इलाहाबाद–211004
दूरभाष : 545011

निवेदक :
श्री सिद्धगुफा योग साधना मन्दिर
इलाहाबाद

ये दो प्रकार के पुरुष...

(विदुर नीति से)

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हत:।।६।।

पुरुषश्रेष्ठ ! ये दो प्रकार के पुरुष सूर्यमण्डल को भेदकर ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं–योगयुक्त संन्यासी और संग्राम में लोहा लेते हुए मारा गया योद्धा।

***

द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भ: कार्यवांश्चैव भिक्षुक:।।६२।।

दो ही अपने विपरीत कर्म के कारण शोभा नहीं पाते–अकर्मण्य गृहस्थ और प्रपंच में लगा हुआ संन्यासी।

***

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्।।६४।।

न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए धन के दो ही दुरुपयोग समझने चाहिये–अपात्र को देना और सत्पात्र को न देना।

***

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।।६५।।

जो धनी होने पर भी दान न दे और दरिद्र होने पर भी कष्ट सहन न कर सके–इन दो प्रकार के मनुष्यों को गले में मजबूत पत्थर बाँधकर पानी में डुबा देना चाहिये।

***

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठत:।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्।।६३।।

राजन् ! ये दो प्रकार के पुरुष स्वर्ग के भी ऊपर स्थान पाते हैं– शक्तिशाली होने पर भी क्षमा करने वाला और निर्धन होने पर भी दान देने वाला।

***

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008 दिसम्बर 2000

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री --

सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।।

तैत्तिरीयोपनिषद्/ब्रह्म. वल्ली/प्रथम अनुवाक

ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। जो मनुष्य परम विशुद्ध आकाश में रहते हुए भी प्राणियों के हृदय रूप गुफा में छिपे हुए उस ब्रह्म को जानता है, वह उस विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का अनुभव करता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326